RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

Nov. 90 to April 91

# मनुष्य बनो

4 था भाग

4, 5, 6 भाग

शरण

शुभ संकल्प.

क्षमा.

प्रेम.

निष्काम कर्म.

ब्रह्म

पालन.

S. Vithal

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

# 'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्त
दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्ट
चार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसक
मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना ।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध औ
साधारण भाषा में प्रचार करना ।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्था
दिया जायेगा ।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छा
जायेंगे ।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पाद
को होगा । लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय ।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ–सा
अवश्य लिखना चाहिए । उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहि
वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी । इसका वार्षिक मू
२०.०० है ।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अप
यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले
अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंच
पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी ।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आ
मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए । मनीआर्डर कूपन पर अपन
पता साफ-साफ लिखना चाहिए । और पते की तबदीली भी ।

—प्रकाशक

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

राधास्वामी सहाय

# राधास्वामी योग

## योग साधन की तीसरी विधि?

—x—

## बहत्तरवाँ वचन

### चार प्रकार के मार्ग

हर प्रकार की सफलता के लिये चार मरहले (दर्जे) होते हैं। उनमें से तीन तो वह हैं जिनका समझ-बूझ के साथ ज्ञान और भोग बना रहता है और चौथे में यह अवस्था होती है कि ज्ञानी और भोगी अपने आप को इस तरह मेट देता है कि फिर वह स्वयं ही ज्ञान और भोग का रूप हो जाता है और विवेक नहीं रहता।

---

(१) इसभाग में अब राधास्वामी मत की फिलोसफी का प्रारम्भ होता है जिसको बार-बार ध्यान में समझ कर अध्ययन करने की आवश्यकता है लेकिन यह सदा याद रहे कि इसको फिलोसफी का नाम दिया जाय तो वह अमली (क्रियात्मक) फिलोसफी हैं। केवल वाचक ज्ञान से ही इसका सम्बन्ध नहीं है। अभिप्राय यह है कि इसकी पूर्ति साधन और अभ्यास द्वारा कर ली जाय,तब यह लाभदायक सिद्ध होगी वर्ना औरों की तरह हानिकर होगी। साधक को इसकी फिलोसफी के जानने और जताने की आवश्यकता भी कम है। जो अभ्यास करेगा

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

यह सालोक है। दूसरा व्यक्ति राजा का पड़ौसी बन जा और दूसरों की अपेक्षा राजा के समर्थन और सहायता का अधिकारी रहता है। तीसरा व्यक्ति कर्मचारी या मन्त्री होकर राजा का रूप या उसके रूप का अंश बना हुआ उसकी सारी महिमा और महत्व का भागीदार बना हुआ है। यह तीनों दशाऐं तो समझ में आती हैं। चौथी अवस्था का समझना थोड़ा कठिन है। यह उस व्यक्ति को प्राप्त होती है जिसने अपने मन पर नियन्त्रण कर लिया है और राजा से मिलकर एक हो गया है। यह सबसे बढ़कर है।

संसारी पदार्थों के भोगों में भी यही दर्जे हैं और ऊंची दृष्टि से परमार्थ में भीं मौजूद हैं। जिसका वर्णन अवसर के साथ साथ किया जायेगा।

तीन मरहले (दर्जे) तो स्पष्ट शब्दों में वर्णन किये जायेंगे चौथा संकेत में वर्णन किया जायेगा।

—×—

# तिहत्तरवाँ वचन

## गुरु करने का उद्देश्य

गुरू करने का उद्देश्य तो बता दिया गया है लेकिन दुबारा फिर भी उसकी ओर ध्यान दिलाया जाता है ताकि विषय भली प्रकार समझ में आ जाय।

गुरू धारण करने का प्रारम्भिक उद्देश्य यह है कि (१) ध्यान (तवज्जह) अनेक की तरफ से हटकर केवल एक ओर लगे (२) उसकी संगत और सेवा से उसी के जैसे भाव हृदय में उत्पन्न होकर उसी की तरह और उसी के दृष्टकोण से असलियत के समझने और समझाने में सहायक हों, (३) जो अवस्था गुरु की है वह उसको भी प्राप्त हो।

रहता है। चंचल मन किसी बात को ज्यों का त्यों नहीं समझ सकता। उसके लिये आवश्यक है कि वह किसी केन्द्र पर स्थित हो रहे। यह केन्द्र गुरु का स्वरूप है।

गुरु के सत्संग में जाकर बैठना सालोक अवस्था है जो वचन साधारणतया वहां सुने जायेंगे और उनका जो आनन्द प्राप्त होगा वह लोक का भोग कहलायेगा। यदि अधिक नहीं तो कुछ तो उससे वचन विलास का प्रभाव होगा। गुरु की निकटता, समीपता या सामीपता है जो सामीप कही जाती है इस निकटता से सत्संग और वचनों की असाधारण समझ आ जायेगी जिसका आनन्द भी असाधारण होगा। गुरु का रूप चेले के हृदय को प्रभावित करके वैसे ही भाव उत्पन्न करने लगेगा और सारूपता आने लगेगी। तब वह कुछ और ही बनने लगेगा। इसी प्रकार जब वह गुरु के ध्यान में लय होता हुआ सायुज्जता को प्राप्त कर लेगा तो गुरु जैसा हो जायेगा। इसमें और गुरु में तनिक भी अन्तर न रहेगा।

सेवक स्वामी एक मत, जो मति में मति मिल जाव।
चतुराई रीझें नहीं, रीझें मन के भाव॥

यह साधारण और प्रारम्भिक समानता है जो संगत और सेवा से प्राप्त होती है। लेकिन इसे यहीं ही तक सीमित न जानना चाहिए और इन चार शब्दों को आगे आने वाली अवस्थाओं की समझ के लिये स्मरण रखना चाहिए ताकि आगे चलकर आत्मिक उन्नति की अवस्था भी समझ में आ सके।

जब इन अवस्थाओं में घनापन आने लगता है तब यही अवस्थायें विशेष प्रकार की लय-अवस्था के पैदा करने वाली हो जाती हैं।

यह सालोक अवस्था का घनापन वही दशा उत्पन्न कर

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

देता है जो दशा बाग के निकट स्थान में रहने से सुगन्धित वायु के झोंके से दिल और दिमाग को तरावट पहुंचकर बेखुदी या बेसुधी की प्राप्ति होती है। दुनियां में ऐसे भी आदमी हैं जो बाग में बिना घसे हुए भी दूर ही से उसकी सुगन्ध से मस्त हो जाते हैं। दूसरे लोग बाग में घुसकर उसकी सुगन्धि का आनन्द उठाते हैं। तीसरे फूलों के रंग रूप को देखकर और सुगन्ध को सूंघकर लय होने लगते हैं। चौथे स्वयं ही इन दृश्यों से प्रसन्न होकर बेसुध होकर अपने आपे से जाते रहते हैं। इसमें या इनमें अपनी पात्रता, योग्यता और अधिकार का भी बहुत कुछ प्रभाव होता है। ऐसे लोग भी हैं जिनका पात्र छोटा है और थोड़े ही में उबलकर उन्मत्ता के रंग में रग जाते हैं। प्रसंशा तो इस पात्र या अधिकारी की है जो समस्त स्थानों और अवस्थाओं से गुजतरता हुआ अन्तिम अवस्था के आनन्द से आनन्दित होकर मन और शरीर के अभिमान के बन्धन को तोड़ देता है।

सालोकता में स्थान से गिरने का डर रहता है। सामीपता में समीपता के अन्त होने का डर रहता है। सारूपता में उस रूप से रहित होने का डर रहता है। यह अवस्थायें चाहे प्रशंसनीय हों मगर जब तक अपने आपे में लय न हो या सायुज ता की अवस्था प्राप्त न हो, तब तक वह अधिक माननीय नहीं होती है। इस सायुज्जता के भी कई दर्जे हैं जिनका वर्णन धीरे-धीरे आगे किया जायेगा। यह चारों अवस्थायें अभी देह के ही दृष्टिकोण से वर्णित की गई हैं क्योंकि देह भाव में भी लय अवस्था या बेसुधि होती है। लेकिन यह टिकाऊ नहीं है। इस पर ही निर्भय होकर न बैठे रहना चाहिये क्योंकि अभी दिल्ली दूर है।

अनुभवी सूफी और साधक वेदान्ती इस जगह प्रायः ठहर

कर बेवस और बेसुधि हो जाते हैं। इनको भी सन्त सद्गुरु की सहायता की अभी आवश्यकता रहती है। लेकिन केवल विद्वान सूफी या वाचक ज्ञानी वेदान्ती को इस लय अवस्था का भी लाभ नहीं मिलता।

आसन मारे क्या हुआ, मिटी न मन की आस।
तेली केरा बैल ज्यों, घर ही कोस पचास।
आशा का ईंधन करो, मंसा करो भभूत।
जोगी फेरी यों फिरो, तब बुन आवे सूत॥

घबराओ नहीं। वचनों को ध्यान से पढ़ते और सुनते चलो ताकि पात्र विशाल होता जाय और ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती जाय। तब काम बनेगा।

—×—

# चौहत्तरवाँ वचन

## कर्म, उपासना और ज्ञान

मनुष्य देह, मन और आत्मा से मिलकर बना है। कोई मनुष्य चाहे वह कैसा ही पुष्ट शरीर और तीव्र बुद्धि वाला हो एक ही वस्तु का बना हुआ नहीं है किन्तु इनसे मिलकर बना है। मिश्रित वस्तु शीघ्र बिगड़ जाती है और क्षण क्षण में बदलती रहती है जो मनुष्य की असलियत को न समझकर साधारण आध्यात्मिक शक्ति के नशे में चूर हो जाते हैं, वह कुछ उन्नति भी कर गये तो उनकी उन्नति आदरणीय नहीं है। वह क्षणिक विज्ञानवादी बन जायेंगे।

क्षणिक विज्ञान वादी बौद्धों का एक सम्प्रदाय था। जो क्षण क्षण परिवर्तनशील बुद्धि ही को आत्मा, रूह और निज–स्वरूप समझकर धोखे में पड़ गये और अधड़ में अटक कर

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

सन्देह नहीं कि यह किसी सीमा तक बड़े फिलोसफर और विज्ञानी थे। जन साधारण से यह बहुत ऊंचे चढ़ गये थे, मगर पदार्थ के घेरे ही में घूम फिरकर उसी के ही हो रहे और इष्ट पद से बंचित रह गये। राधास्वामी मत इनकी गलतियों को दिखाता हुआ अपने सत्सङ्गियों को सावधान करता हुआ उन्हें सोच-समझकर संभलकर रहने की आज्ञा देता रहता है ताकि यह भी कहीं इनकी तरह भ्रम में न फँसे। यहां ठहरने की कहीं आज्ञा नहीं है और क्षणिक सन्तोष पर भूलकर उसी में न अड़ने की ताकीद है।

बौद्ध, इसमें सन्देह नहीं, दुनियां के बहुत बड़े बुद्धिमान, खोजी और जिज्ञासू थे। लेकिन वह भी सूफी और वेदान्तियों की तरह खराबी में पड़ गये और असलियत से बंचित रहे।

पाँच प्रकार के बौद्ध होते हैं। प्रथम योगाचार्य (योग के अभ्यासी), दूसरे मध्यमान्तक (बीच के मार्ग के अभ्यासी) तीसरे सूत्रांतक (जगत और जगत के समस्त जीव जन्तुओं को एक ही सूत या डोरे से गुथे हुए जानने वाले), चौथे क्षणिक विज्ञान वादी (क्षण क्षण में बदलने वाली बुद्धि के उपासक), पाँचवे शून्यवादी (शून्य अर्थात् आकाश या पोल को असली तत्व मानकर उसमें अड़ने वाले)। इनको कोई कोई चार ही प्रकार का मानते हैं।

योग का असली ध्येय कुछ और ही है। योगाचार्य उसी के हो रहे। ध्येय को हाथ तक नहीं लगाया। योग केवल साधन मात्र हैं। वह इष्ट या प्राप्तव्य वस्तु नहीं है। यह प्राणायामी योगियों की तरह अकारण सिद्धि शक्ति में फंस गये। साधक सूफियों और अभ्यासियों की भी यही दशा रहती है।

मध्यमांतक भी सुषुम्ना नाड़ी के अभ्यासी, अधिकता और न्यूनता से बचकर केवल बीच के रास्ते पर चलने वाले थे।

यह भी साधनों के पाबन्द रह गये । इसमें सन्देह नहीं कि संत मत भी मध्यमार्ग है और वह भी योगाचार्य की तरह योग से काम लेता है । योगाचार्य भी शब्द योग के अभ्यासी थे किन्तु शब्दयोग ही तो सब कुछ नहीं है । वह भी साधन मात्र है । इसी का होकर रहना भी बड़ी गलती है । परम संत कबीर साहब ने इसी कारण से स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय ।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय ।।

क्षणिक विज्ञानवादी केवल बुद्धि ही के लपेट में पड़े रहे । बुद्धि भी साधन मात्र है । उससे केवल काट छाँट करते हुए असल तत्व से सम्बन्ध पैदा करने की आवश्यकता है, बुद्धि या साधन ही सब कुछ नहीं हैं ।

शून्य केवल आकाश तत्व है, जिससे यह सब तत्व उत्पन्न होते हैं और जगत की रचना का दारोमदार इसी पर है । श्रेष्ठ शब्द न मिलने से शून्य ही को वह सब कुछ समझ बैठे और शून्य का गलत अनुवाद खला या पोल' करने लगे । भला कोई इनसे पूछे तो सही यहाँ पोल कहाँ है ? बात कुछ थी । और यह कुछ समझ बैठे । शून्य का अनुवाद 'अदम'और अदम का अनुवाद नेस्ती अरबी और पारसियों ने किया । नेस्ती से आज तक कभी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हुई, न हो सकती है, न होगी । इस 'अदम' का ख्याल इन सूफियों ने शून्यवादी बौद्धों से लिया था । यह आकाश को शून्य समझते हुए उसे 'खला' कहने लगे ।

इसकी देखा देखी अरब के दरवेशों और पारस के सूफियों ने उसी का अनुवाद 'अदम' कर लिया । 'अदम' वास्तव में शून्य की तरह आकाश का पर्याय वाचक है । इसी 'अदम' के

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

सिलसिले में 'फना' का शब्द निकला। 'फना' को भी अज्ञान 'नेस्ती' समझते हैं, यद्यपि वह मस्ती बेसुधि और लय की अवस्था। हम यह बातें इस कारण से कह रहे हैं ताकि किसी तरह नफी या नेति के विचार लोगों के हृदय से निकल जांय और वे असलियत की ओर झुकें; तब एति हाँ, या स्वीकृति के सिलसिले में उनको ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दी जा सकेगी। क्योंकि नफी या नेति के विचारों का मन में यदि थोड़ा सा भी भ्रम रह गया तो वह भयंकर सिद्ध होगा और असलियत या शुद्ध स्वरूप तक पहुंचने में कमी रहेगी।

सूत्राँतक के सिद्धाँत के मानने वाले बौद्ध ही थे। वह कहते हैं कि सारी दुनियाँ एक ही सूत्र में पिरोई हुई है; यह सूत्र ही सब कुछ है। इस सिद्धांत के अनुसार बहुत से पारसी और अरबी लोगों ने यह सिद्धाँत वर्णन किया कि सब कुछ वही है या सब कुछ उसी से है। बात तो सच्ची है। इससे किसी को इंकार कब है। आपत्ति तो इतनी है कि केवल इस एक विचार पर जम कर बैठे रहने से क्या लाभ होगा। यह तो केवल जबानी जमा खर्च रहा। थोड़ा सोचें समझें तो बात समझ में आवे। अभिप्राय यह कि सर्वत्र भूल और भ्रम चल रहा है। लोग कर्म, उपासना और ज्ञान का मन्तव्य समझने से वंचित हो रहे हैं। राधास्वामी मत चूंकि विशेष अध्यात्म का मार्ग वह इनकी सहानुभूति की दृष्टि से सबकी व्याख्या करता हुआ असलियत की ओर ले जाता है। किसी का खण्डन नहीं है।

— x —

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

# पिचहत्तरवाँ वचन

## कर्म, ज्ञान, उपासना (लगातार)

देह, मन और आत्मा से मनुष्य बना है और उसके समस्त कर्म, विचार, श्रद्धा और विश्वास की जड़ इन्हीं तीनों में है।

देह का सम्बन्ध कर्म से है। समस्त इंद्रियाँ और अंग कर्म के नियम के आधीन हैं। कोई शरीर धारी कर्म से बच नहीं सकता। सोच समझ लो, तब और बातें करो। यह कर्म है।

मन का सम्बंध विचार से है। सोचना, समझना और ध्यान देना यह मन के कर्म हैं। ध्यान विश्वास आदि केवल मन ही की कल्पनायें हैं। मन कल्पनाओं के नियमों के आधीन है। उसका तो कर्त्तव्य ही यह है कि सदा संकल्प विकल्प उठाया करे। यह ठाली कब बैठ सकता है। बन्दर की तरह यह सदा अपनी कलाबाजियों और अठखेलियों में पड़ा रहता है। इसी मन का अंग बुद्धि है। मन के चार रूप हैं—चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार। अलग अलग मानने में यही मन अन्त:करण चतुष्टय कहलाता है। चित्त चिंतन शक्ति है। मन मनन शक्ति है। बुद्धि निश्चय शक्ति है। अहंकार दृढ़ता शक्ति है। चारों के चार प्रकार के कर्त्तव्य हैं। जिस प्रकार बाह्य देह दस इंद्रियों में बंटा हुआ है वैसे ही अतंरीय देह (मन) भी चार अंतरीय इंद्रियों में बटा है। जिस प्रकार देह कर्म के नियम के आधीन है वैसे ही मन संकल्प या ख्याल के नियम के आधीन है। यह समझ लो।

अब रह गई तीसरी वस्तु जिसको साधारणतया रूह या आत्मा कहते हैं। इसका स्वभाव सुख और शाँति है। यह शाँति के नियम के आधीन है। तीन वस्तुओं के आपस में

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

मिलने के कारण मनुष्य ख्याल की उड़धेबुन में पड़ा रहता

देह के कारण वह कर्म करता है। मन के कारण वह ख्याल की उधेड़ बुन में पड़ा रहता है और रूह या आत्मा के कारण उसमें शाँति और सुख है। यह तीनों बातें प्रत्येक मनुष्य में मौजूद हैं। लेकिन रूह और आत्मा ऐसा गूढ़ शब्द है जिसके असली अर्थ की व्याख्या नहीं होती। अरबी में रूह साँस को कहते है। शाब्दिक अर्थो से असली अभिप्राय का पता नहीं लगता। इसी प्रकार आत्मा का शब्द भी अर्थपूर्ण नहीं है। इसरे भी शाब्दिक अर्थो पर विचार करने से पता चलता है कि प्रारम्भ में आत्मा का अर्थ मन रहा होगा। अत्त (गति) और मतन (सोचना) यह इसकी धातु हैं। धातु के अर्थ स्पष्ट रूप से इसकी असलियत का पता देते हैं कि वह (आत्मा) इनके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। लेकिन अधिक प्रयोग में आने पर अब उसे भी रूह की तरह हकीकत के माने में प्रयोग किया जाता है। संतों ने अपने ढंग पर इस रूह या आत्मा के लिये 'सुरत' का शब्द गढ़ा है जो अधिक स्पष्ट रूप से असली मंतव्य को समझाता है सुरत में ठहराव, स्थिरता, शाँति है।

तीनों के तीन प्रकार के कर्त्तव्य वर्णन कर दिये गये। जब शरीर या शारीरिक अंगों को संयम में लाकर उससे भले और धार्मिक कर्म कराये जाते हैं तब उसके काम को शुभ कर्म कहते हैं। कर्म काण्ड की जड़ इसी में है। इसी कर्मकाण्ड को सूफी शरीयत कहते हैं।

जब मन को संयम में लाकर उससे शुभ विचार, और धार्मिक ध्यान आदि का काम लिया जाता है तब उसी को उपासना या भक्ति कहते हैं। इसी को सूफी तरीकत कहते हैं। उपासना काण्ड का सम्बंध मन ही से है। जब मन को इस

तरह सुरत के साथ मिलाकर सार वस्तु की खोज की ओर लगाया जाता है तो इस मिलान और इनकी चेष्टा को ज्ञान कहते हैं इसी ज्ञान का नाम सूफियों के यहाँ मारफत है। ज्ञान काण्ड का सम्बन्ध सुरत के साथ है।

एक ओर सुरत है दूसरी ओर देह है। मन बिल्कुल बीच वाला बना हुआ दोनों से काम लेता है। मन के बिना देह में गति नहींआती और मन के बिना सुरत को असलियत का पता नहीं लगता। इस कारण से मन उन दोनों में बीच की कड़ी है और उसी का सुधार और संयम आवश्यक ठहराया गया है।

कर्म, उपासना और ज्ञान की संक्षिप्त व्याख्या तो कर दी गई लेकिन अभी तक इस योग साधन की तीसरी विधि के सम्बन्धे में उनके साधन और अभ्यास के स्थान आदि पर प्रकाश नहीं डाला गया। अब उनके विषय में फिर सुनो।

कर्म की जड़ चूंकि देह में है इसलिये सब शारीरिक कर्म उस समय किये जाते हैं जब देह गतिमान होता है। देह ही की गति में शारीरिक दौड़ धूप रहती है। देह की गति का समय जाग्रत की अवस्था है जब आँखें खुली हुई हैं, जिभ्या बोलती है,नाक सूंघती है,हाथ धर पकड़ करते हैं आदि आदि कर्मकाण्ड इस दृष्टि से जाग्रत के समय पर निर्भर है।

विचार की जड़ चूँकि मन में है इसलिये सब मानसिक व्यवहार उस समय किये जाते हैं और किये जा सकते हैं जब मन गतिमान रहता है और मन की गति का नाम ही मानसिक दौड़-धूप है। मन की गति का समय स्वप्न की दशा है जब शरीर निरर्थक रहता है, बाहरी आँखें नहीं देखतीं, बाहरी कान नहीं सुन सकते, बाहरी नाक नहीं सूंघती, बाहरी हाथ

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

प्रकार समझ लो। उपासना काण्ड इस कारण से केवल
के समय पर निर्भर है। लेकिन स्वप्न के अभिप्राय को भी लाग
बहुत कम समझते हैं। स्वप्न का अर्थ यही नहीं है कि खाट पर
लेट कर आदमी स्वप्न ही देखा करे यद्यपि यह उसका स्वभाव
अवश्य है। जब मनुष्य किसी विचार में महव या लीन हो
जाता है उसके हाथ पाँव गतिहीन हो जाते हैं वह बैठे-बैठे में
सोचता रहता है। यह भी स्वप्न ही है। उपासना इसी दशा
में की जाती है। यदि मनुष्य इस आदत का अभ्यास कर ले
और उसे मन पर मन से काबू मिल जाय तो जाग्रत में भी यह
अमल (क्रिया) हुआ करती है। उपासना और कोई वस्तु नहीं
है किंतु यह खासतौर पर ध्यान की क्रिया या ध्यान शक्ति है।

शान्ति की जड़ चूंकि सुरत (आत्मा) में है, इसलिये शाँति के कुल कार्य उस समय होते हैं जब मन सुरत के साथ लीन होकर अपनी अठखेलियाँ भूल जाता है। जब मन सुरत में लीन हो जाता है तो उसी को आनन्द और शान्ति कहते हैं। मन की शान्ति का समय सुषुप्ति है। इस दशा में देह और मन दोनों निरर्थक और निकम्मे हो जाते हैं। दोनों अपनी गति को भूल जाते हैं। दोनों ही को शाँति और आनन्द प्राप्त होता है जो केवल सुरत के कारण से है। इसी का नाम ज्ञान है। ज्ञान जानने बुझाने और समझने बूझने को नहीं कहते। शाँति ही ज्ञान है जिसका होना सुषुप्ति में प्रकट होता है। सुषुप्ति के अभिप्राय को भी कम लोग समझते हैं। गहरी नींद का अभिप्राय इतना ही नहीं है कि खाट पर लेटकर बेहोश हो रहे। यद्यपि यह उसका स्वभाव अवश्य है। मनुष्य यदि इसका अभ्यास करे और मन को सुरत में जोडने की क्रिया या साधन को जान जाय तो वह चलते फिरते, उठते बैठते इस आनन्द

को भोग सकता है और जाग्रत में रहकर भी सुषुप्ति का सुख ले सकता है। सुषुप्ति केवल शांति का नाम है। इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं है। इसी का नाम ज्ञान है। ज्ञान के सींग पूंछ नहीं होते। वह केवल शांति है और कुछ नहीं है।

प्रत्येक मनुष्य केवल साधन और अभ्यास के सिलसिले में यह अवस्था अपने अन्दर उत्पन्न कर सकता है। होने को तो वह हर समय उसमें, उसके अंदर और उसके साथ है। क्षण भर को भी अलग नहीं है। हां वह उसे जानता नहीं, यद्यपि प्राकृतिक रूप से वह प्रतिदिन स्वयं ही इससे काम लेता है। वह प्रतिदिन सोता और गहरी नींद का सुख लेता है। इनके लिये उसे न कहीं आने जाने की आवश्यकता है और न किसी पदार्थ का बन्धन है। यह उसमें उसके अन्दर है। केवल थोड़ा चेतने और चेतवान होने की आवश्यकता है और बस!

कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों की जड़ का पता भी बता दिया गया। इस पर विचार करो। इत उत न बहको। यदि बहकते हो तो फिर हमारी और बातें तुम्हारी समझ न न आवेंगी।

ज्ञान बेखबरी (अचेतना) नहीं है क्योंकि जैसा तुमको पहले समझाया गया है कि जब तुम इस सुषुप्ति की निर्बोधता और शान्ति की सूचना देते हो तो फिर उसे अचेतना कैसे कह सकोगे? अचेतना की सूचना देना भी तो ज्ञान है।

यह तीनों बातें मनुष्य में मौजूद हैं। थोड़ा सा इन पर विचार करो।

गुरु की उपासना, सेवा और संग से प्रकट रूप में स्वयं तीनों आदतें तुम में आने लगेंगी और तुम कर्म करते हुए उपा-

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

सक और उपासना करते हुए ज्ञानी बनने लगोगे।

सत्संग में तीन साधन होते हैं—श्रवण, मनन और निधि-ध्यासन।

श्रवण सुनना है। यह शारीरिक कर्म है। मनन सोचना है। यह मानसिक उपासना है क्योंकि एक विशेष विचार के निकट बैठकर तुम आसन मारते हो और उसी के ध्यान में लग जाते हो। निदिध्यासन सूरत का एक स्थान पर रहना है यह रूहानियत (अध्यात्म) है। निदिध्यासन का अर्थ है निद्धि का आसन लगाना। निद्धि आराम और शान्ति को कहते हैं। इन सबकी जड़ सुरत में है। यह तीनों काम तुमसे सत्संग में होते हैं। सोचो, सत्संग की शिक्षा और संयम के बन्धन की अवस्था में इस प्रकार तुमको स्वतन्त्रता की निधि प्राप्त हो जाती है। यद्यपि यह निधि (दौलत) तुम में ही तो है। केवल गुरु की कृपा और दया से उसकी जानकारी होने लगती है। गुरु तुम्हारे अन्दर गढ़ा हुआ खजाना तुम्हें देते हैं। यदि इसी श्रवण, मनन और निधिध्यासन के साधन को खूब बढ़ा लो तो तुम देह और मन के सम्बन्धों के रहतेहुए उनसे अनासक्त रहने लगोगे। मगर यह याद रखो कि यह सब बातें अभी तक देह ही के मण्डल के अन्दर हैं। अपनी ही देह में तुम इनको अनु-भव करने लगे हो। कुछ समय तक इनसे काम रक्खो ताकि आगे के मरहलों में गुजरने और पार करने की योग्यता तुम प्राप्त कर सको।

—:•:—

# छिहत्तरवां वचन

## गुरु के वचन में कर्म, उपासना और ज्ञान

कर्म वृक्ष है जिसमें तना, शाखा और पत्ते आदि हैं। उपासना फूल हैं जिसमें सुगन्ध की लहर है। ज्ञान फल है जिसमें मिठास और स्वाद का आनन्द है। उसी फल में बीज रहते हैं और बीज में ही अनेकता और एकता की जड़ रहती है।

कर्म में देह की गर्मी रहती है। मन में सोच विचार की दौड़ धूप रहती है। आत्मा में शान्ति का निवास है क्योंकि आत्मा स्वयं शान्त है।

एक व्यक्ति ने आम की गुठली ली। उसे केवड़े, गुलाब, अदरक, सौंफ अथवा दूसरे प्रकार के सुगन्धित रस से सींचने लगा। गुठली जमीन में गढ़ी है और वह सुगंधित रस से सींची जाती है। समय पर उसमें कोंपल निकले, पत्ते आये, शाखायें फूटीं और आकाश की ओर चल निकली। बौर आया, आमियां लगीं और आम बड़े हुए। बड़े होने पर वे पके। जिस-जिस प्रकार के जल से गुठली सींची गई थीं उसी प्रकार का स्वाद उसके चूसने से मिलता है। स्वाद भी है और स्वाद के साथ सुगन्ध भी है। आम की हजारों किस्में इसी प्रकार बनाई जाती हैं। वह उनके गुण और स्वाद को अपने अन्दर सोख लेता है।

इसी प्रकार परमार्थ की कार्यवाही की जाती है। गुरु ने राधास्वामी नाम बताया। यह आम की गुठली है। शिष्य ने उसे लेकर अपने मन रूपी खेत में बो दिया। दिन प्रतिदिन गुरु के वचनामृत से उसे सींचता रहा। अन्त में उसने उसके

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

अन्दर विशेष प्रकार का फल उत्पन्न किया। जिसमें अमृत स्वाद है। यह बीज लगाने वाला आप तो अमर हो ही जाता हैं और जो कोई उस फल को उससे लेकर खाता है उसे भी अमृत का आनन्द मिलता है। यह गुरु के रोजाना सत्संग की कृपा से प्राप्त होता है।

जो सुनो उसे अपने मन में रख लो। उसी को आध्यात्मिक भोजन बनाओ। इसी भोजन से तुम्हारा मन तैयार होगा। क्यों कि मन भोजन से ही बनता है। आदमी जैसा भोजन खाता है उसी के अनुसार उसका मन बनता है।

स्थूल और मलीन प्रकार के भोजन से मलीन मन और सूक्ष्म प्रकार के भोजन से सूक्ष्म मन बनता हैं। इसी कारण से संत मत अर्थात राधास्वामी मत में सूक्ष्म भोजन के प्रयोग पर इतना अधिक जोर दिया जाता है। माँस मदिरा से पूर्णतया परहेज कराया जाता है ताकि उत्तेजना और मलीनता का प्रभाव मन पर उत्पन्न न होने पावे अन्यथा वह अध्यात्म के ग्रहण करने के योग्य न होगा। यहाँ वचन रूपी अन्न का वर्णन किया जा रहा है। इन वचनों में विशेष प्रकार की बिजली का प्रभाव होता हैं। जब तक सुनने वाला सूक्ष्म स्वभाव वाला बनकर उनको अपने अन्दर न रख लेगा तब तक वह प्रभाव उसके अन्दर कैसे आयेगा। सुगन्धि तो सुगंधि की तरह उड़ती है लेकिन यदि किसी ने नाक में बुरी वस्तु ठूंस रखी है तो वह सुगन्ध की लपट से अपने मन और बुद्धि से कैसे प्रभावित करेगा। इसलिए बार बार कहा जाता है मन को मलीनता से पवित्र करके तब गुरु की वाणी को सुनो ताकि वचन उसमें प्रवेश करता जाय। यह जितना प्रवेश करेगा उतनी ही तुम में शक्ति आती जायेगी। यह शक्ति तुम्हारे जीवन में विशेष

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

प्रकार का आश्चर्यजनक परिवर्तन कर देगी। रहनी बदल जायेगी और तुम कुछ के कुछ हो जाओगे।

इस बात का आग्रह है कि तुम में श्रद्धा अवश्य हो अश्रद्धा वान पर गुरु के वचन का प्रभाव कम होता है। पानी बरस रहा है। औंधे हुए मटके को यह सम्भव है कि ठण्डक पहुचाये मगर यह ठण्डक अस्थायी होगी क्योंकि पानी की बूदें उसके अन्दर प्रवेश नहीं होती। ऊपर ही ऊपर बरस कर बह जाती हैं। जहां कड़ाके की धूप नि ली फिर वही गर्मी और खुश्की हो जायेगी। लेकिन जो बर्तन पानी को अपने अन्दर रखता है और उसे सोख लेता हैं वह अधिक समय तक ठण्डा रहता है।

आध्यात्मिक विद्या का प्रारम्भ श्रद्धा और विश्वास से है यह पहिली शर्त है। यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया तो यही अन्तिम दशा भी है।

श्रद्धा रहित मनुष्य को गुरु के वचन से लाभ नहीं मिलता वह कोरे का कोरा रह जाता है। यह भी सम्भव है कि उससे उसकी अश्रद्धा और बढ जाय। यह अत्यंत भयानक है इससे बचकर रहने में कुशलता है।

गुरु के सत्संग में कईप्रकार के लोग आते हैं चूंकि विचारों का तबादला या परिवर्तन होता हैं, वह अपने बुरे ख्याल वहां छोड़ जाते हैं और अच्छे ख्याल ले जाते हैं। गुरु भलाई और बुराई दोनों ही से रहित होते हैं क्योंकि इनका आपेक्षिक संबंध है उनकी शिक्षा निःस्वार्थ होती है। चूंकि उनको स्वयं किसी की भलाई और बुराई से सरोकार नहीं रहता, यह बुरे और भले ख्याल अलग-अलग पड़े रहते हैं। जो भले आते हैं वह तो भलाई के विचारों के अधिकारी होकर अधिक भले बनकर

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

उन्हें ले जाते हैं और जो बुरे हैं वह बुराई के ख्यालात अपने हृदय रूपी बर्तन में भर ले जाते है। जो जैसा है वह वैसा ही तो व्यवहार करेगा। मेह के बरसने से वाटिका में फूल के वृक्ष उगते हैं और ऊसर बंजर भूमि में काँटे-कटीले उत्पन्न होते हैं। यही सिद्धान्त मन्दिर और तीर्थ आदि के विषय में समझना चाहिए। कोई श्रद्धावान तो मन्दिर और तीर्थ में जाकर अच्छा बन जाता है। अश्रद्धावान अधिक बुरा बनकर वापिस आता है।

श्रद्धावान बनो। गुरु की संगत का लाभ उठाओ। उनके वचनों की शक्ति लेकर उन्ही के अनुसार अपनी करनी बनाओ यह गुरु के वचन का कर्म कांड है। गुरु के ख्याल को हृदय में स्थान दो। यह गुरु के वचन का उपासना काण्ड है। गुरु के वचन और ख्याल के अर्थ और अभिप्राय को आत्मसात्(ग्रहण) कर लो। उसकी सहायता से शान्ति प्राप्त करो। यह गुरु के वचन का ज्ञान काण्ड है।

तुम जाग्रत में जो काम करते हो उसी के प्रभाव को अपने अन्दर लिये हुए उसी प्रकार के स्वप्न देखते हो और उसी प्रकार के स्वप्न देखते हुए गहरी नींद में जाकर ठहरते और सुख पाते हो। यदि यह बुरे हैं तो स्वप्न के जगत में बेचैनी रहती है और सुषुप्ति में अधिक देर नहीं ठहर सकते। फिर जागने पर वही बेचैनी रहती है। यह तुम जानते हो यइ दिन प्रतिदिन का तुम्हारा काम है। इस अनुभव से लाभ उठा कर तब गुरू के वचन को सुनो। जाग्रत में उसी का अभ्यास करो स्वप्न में उसी को देखो और सुषुप्ति में इसी को अपने आराम का सहारा बनाओ।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

राधास्वामी मत करनी का मार्ग है। यह बुद्धि या फिलोसफी का मार्ग नहीं है। ऐसा धर्म जिसमें करनी की मुख्यता है उस धर्म से भिन्न है जो केवल ज्ञान पर ही जोर देता है। यहाँ जबानी जमाखर्च की आवश्यकता नहीं है यहाँ तो अमली जीवन बनाने का उद्देश्य है। और बस।

कर्म के बिना उपासना नहीं, उपासना के बिना ज्ञान नहीं है। यह अच्छी तरह समझ लो तब काम बनेगा। हम यह नहीं कहते कि फिलोसफी व्यर्थ और निकम्मी वस्तु है। हम यह कहते हैं कि पहिले फिलोसफी की सहायता से उसकी शिक्षा के मन्तव्य को हृदयाँगम करके तब उस पर चलो। इसके बिना इसका सच्चा ज्ञान न होगा।

—×—

# सतहत्तरवाँ वचन

## कर्म क्या है ?

अस्तित्व (हस्ती) के प्रकट होने का दृश्य कर्म है। जहाँ जीवन होगा वहाँ कर्म अवश्य होगा, क्योंकि अस्तित्व नाम है प्रगट होने का और कर्म उसी के प्रकट करने की क्रिया है यह जीवन का स्वभाव है। जीवन बिना कर्म के एक क्षण भी नहीं रह सकता, कर्म करने से कोई प्राणी बच नहीं सकता है। कहने के लिये कोई व्यक्ति जो चाहे कहा करे, कोई किसी की जबान नहीं रोक सकता लेकिन सच्चाई सच्चाई है। जो जिसका स्वभाव होता है उसे उससे पृथक किस तरह किया जा सकता है। हाँ, कर्म में भेद है और इस भेद को समझलेना आवश्यक है।

शास्त्रों में कर्म को अज्ञान बताया है। यह कहा गया है

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

यह देखना है कि इन शास्त्रों ने किस दृष्टि से कर्मों की यह व्याख्या की है उस दृष्टि को बिना पता लगाये उनके अभि- प्राय को समझना असम्भव है।

जो कर्म किसीआंशिक(जुजवी)उद्देश्य को दृष्टि में रखकर किया जाता है उसका क्षेत्र सीमित रहता है। और अंश रूप में सीमितपने के दोष से उसका विस्तार नहीं हो पाता। मन का अज्ञान दूर नहीं होता। लेकिन यदि यह कर्म इस तरह से किया जाय कि उसकी सहायता से मन का अज्ञान दूर होता रहे तो फिर क्या वह ज्ञान की बुनियाद न कहा जा सकेगा ?

यह प्रारम्भ में कह दिया गया है कि जिस काम में अपना पन होता है वह बुरा होता है। यदि अपनेपन के दोष को उस मे दूर करके कर्म किया जाय तो यही कर्म आत्मिक उन्नति का कारण बन जाता है और फिर क्रमशः यह उपासना और ज्ञान में बदल जाता हैं।

क्या उपासना स्वय कर्म नहीं है ? और क्या जहाँ जानने समझने के अभिप्राय का ध्यान रहता है उस ज्ञान को कर्म न कहोगे। यह कर्म बुराई की वस्तु नहीं है। मूर्खता से यदि कोई व्यक्ति कर्मों का त्याग करता है तो वह उपासना और ज्ञान का अधिकारी कैसे हो सकेगा। फिर कर्म का त्याग किया किसने है। लेकिन क्या ऐसा त्यागी बैरागी दुनियाँ में है जो ज्ञान के ग्रन्थों को पढ़ता हुआ कर्म से बिल्कुल खाली है पढ़ना गुनना, सोचना समझना भी तो अन्त में कर्म ही है। अन्तर केवल इतना है कि लोग देह के काम ही तक को सीमित समझ कर मन और आत्मा के साथ उसके म्बन्ध को नहीं समझते। विचार तक भी कर्म ही है।

जो गुलाम की हैसियत में गुलाम की तरह काम करता है उसे उस काम में खुशी नहीं मिलती, लेकिन जो मालिक की

हैसियत में काम करता है उसके लिये वही काम अत्यंत सुख-दायक हो जाता हैं। लोग दफ्तरों में नौकरी करते हैं और उनकी दृष्टि हर समय घड़ी पर रहती है।

उनका चित्त काम में नहीं रहता किन्तु वह इस इंतजार में रहते हैं कि किसी प्रकार समय ब्यतीत हो जाय और वह दफ्तर से भाग जाँय। यह नौकरों का काम है। यह काम सच मुच बंधन प्रतीत होता है लेकिन जो व्यक्ति अपने मन को इस प्रकार काम में लगा देता है कि समय की ओर किंचित मात्र उसका ध्यान नहीं रहता किन्तु वह दत्त चित्त होकर काम में इस प्रकार मन को लगा देता है कि उसे पता भी नहीं लगता कि समय किस तरह कट गया तो उसी व्यक्ति का काम भार रूप होने के बजाय बरकत का साधन बन जाता है और उसको सुख मिलता है। यह मालिक की हैसियत में काम करने का ढंग है। यह स्वयं एक प्रकार का योग कहलाता है जिसे कर्म योग कहते हैं।

शास्त्रों ने वैदिक कर्म काण्ड को कर्म कहा है। साधारण यज्ञ आदि किसी विशेष उद्देश्य को दृष्टि में रखकर किये जाते े उद्देश्य पूरा हो गया और कर्म भी समाप्त हो गया। इससे नि:संदेह मुक्तिनहीं मिलती क्योंकि उद्देश्य को दृष्टि में रखकर ऐसे कर्म किये जाते थे और यही बन्धन का कारण होते हैं। नसे इच्छा की जड़ नहीं कटती किंतु ऐसे कर्मों के सिलसिले में च्छाये बढ़ती चली जाती हैं और इच्छा ही बंधन की जंजीर है न कर्मों से चूंकि मन के पर्दे नहीं फटते, इस दृष्टि से शास्त्रों उनको अज्ञान और अन्धकार बताया है। इसके अतिरिक्त नका कोई अभिप्राय नहीं है और हम भी मानते हैं कि यह र्म किसी प्रकार मुक्ति का साधन नहीं हो सकते। इनकी ड़ अज्ञान में है।

ज्ञानी, ध्यानी, अज्ञानी सब ही कर्म करते हैं मगर अज्ञानियों का कर्म बन्धन होता है और ज्ञानी का कर्म मुक्ति का रूप बनाता है। उसमें स्वार्थ और अहंकार है। इसमें स्वार्थ और अहंकार का प्रश्न नहीं हैं। यह अन्तर है।

यह कोई व्यक्ति भूलकर भी न समझे कि ज्ञानी हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता हैं और अपाहज बनकर रहता है। जो ऐसा विचार करता है यह उसकी मूर्खता हैं सच्ची बात तो यों हैं कि ज्ञानी अज्ञानियों की अपेक्षा अधिक काम करते हैं। काम में उन्हें खुशी और बरकत भी मिलती रहती है : अज्ञानी उनसे वंचित रहता हैं।

अज्ञानी बन्धन के जीवन को पसन्द नहीं करता क्योंकि बन्धन वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव के विरूद्ध हैं लेकिन ज्ञानी अपने क्रियात्मक ढंग से बन्धन के जीवन को मन के लगे रहने के दृष्टिकोण से स्वतन्त्रता में बदल देता हैं और प्रसन्न रहता हैं। चाहे जिस अवस्था में रक्खा जाय, उसी अवस्था में प्रसन्न रहता हैं।

कर्म तो कर्म ही है। कर्म में बंधन है। बन्धन कष्टदायक है लेकिन यह मनुष्य के अधिकार में है कि उसी बन्धन के कर्म को अपनी प्रसन्नता का साधन बना ले। यह बात केवल मन पर निर्भर है। किसी अनसमझ स्त्री को दस मन आटा पीसने को दे दिया गया, वह रोने लगी। यह मुझसे न हो सकेगा। काम तो उससे लिया हो जायेगा। कर्म का कानून बन्द तो नहीं किया जा सकता। वह उसको रोती हुई करती है। देर लगती है और वह फिर भी उससे घबराती है। लेकिन दूसरी समझदार स्त्री को वही काम दिया गया। उसने आपत्ति नही की। काम में लग गई। चक्की चल रही है। आटा पिस रहा है और उसने राग छेड़ दिया है। मन उसमें लगा हुआ है। यह

प्रसन्नता से उसी काम को थोड़े समय में पूरा कर देती है और शिकायत का शब्द जबान पर नहीं लाती। काम तो दोनों ने किया। लेकिन एक रोती रही दूसरी हंसती खेलती रही। यह ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म में अन्तर होता है। जिस व्यक्ति ने मानव चोला धारण कर लिया है वह कर्म से बच कैसे सकता है। तमाम दुनियाँ कर्म कर रही है। कर्म का कानुन सर्व-व्यापक है। यह तो करना ही पड़ेगा लेकिन यदि मन में संयम (जब्त) की शक्ति आ जाये तो यही कर्म सचरित्र बनाने का साधन बन जायेगा, उन्नति में सहायक होगा अन्यथा वह आपत्तिजनक हो जायेगा।

कर्म को बन्धन का कारण नहीं बनाना चाहिये। हम सब लोग सीमित मण्डल में बैठे हुए हैं यहाँ प्रत्येक वस्तु बंधी, सिकुड़ी, जकड़ी दिखाई देती है। कौन सी वस्तु है जिसका क्षेत्र सीमित नहीं है अर्थात् सबका क्षेत्र सीमित है। देश, काल और पात्र सब सीमित हैं। तुम्हारा रहने का घर स्वयं छोटा सा है क्या तुमको उसमें खुशी नहीं मिलती ? इस प्रकार तुम्हारा देह और मन रूपी मकान भी छोटा है। जिस प्रकार मिट्टी और ईंट के सीमित मकान को खुशी का स्थान बना लेते हो इसी प्रकार देह और मन को भी क्यों खुशी का स्थान नहीं कर लेते। तुम में से हर व्यक्ति तो राजा नहीं है। सब छोटी-हैसियत रखते है और इसी क्षुद्र परिस्थिति में बड़े बड़े काम करते हुए उंनति कर जाते हैं। इसी प्रकार मन के बढ़ाने के उपाय क्यों नहीं सोचते।

प्रकृति ने यह बन्धन का जीवन किसी विशेष उद्देश्य से कायम किया है। जिस प्रकार एक निर्धन निष्काम कर्म करता हुआ शनैः २ आर्थिक धनी और सम्मानित हो जाता है उसी

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

में चित्त लगाकर विशाल और उदार हृदय वाला बन ज है। धन्य हैं वे लोग जो लोग निर्धन हैं ! क्योंकि उन्ही का अधिक परिश्रम और प्रयत्न करने का अधिकार है। आज वह निर्धन दिखाई देते हैं कल वह धनाढ्य दिखाई देंगे। केवल कर्म करने और कर्म में मन लगाने की आवश्यकता है। इसके सिवा और कुछ नहीं।

आत्मा इस पंच महाभूतों के पिंजड़े में कैद है वह पर फड़ फड़ाती है, उड़ना चाहती है मगर पिंजड़ा उसे उड़ने नहीं देता चूंकि उसमें ऊँचे उड़ने का स्वभाव हैं वह स्वयं हृदय को उस ओर आकर्षित करके ऐसा उपाय निकालेगी कि स्वतन्त्रता के क्षेत्र और मुक्ति के आकाश में उसे उड़ने का अवसर प्राप्त होगा। जो व्यक्ति जितना कर्म करेगा, उतना ही परिवर्तन अपने अन्दर उत्पन्न करेगा मगर यह पिंजड़ा न होता तो फिर किसी को परिश्रम करने की आवश्यकता कब थी।

अज्ञानता में न पड़े रहो बल्कि असलियत को समझो। तब कर्म के महत्व का पता लगेगा।

—x—

# अठहत्तरवां वचन

## कर्म (लगातार)

शुभ कर्मों के करने में हाथ और देह ही शामिल नहीं रहते मन और आत्मा भी सम्मिलित रहते हैं। हाथों से कर्म करने वाला बार-बार अपने मन पर चोट लगाता रहता है अर्थात् उस कर्म का संस्कार बनाता रहता है। और इस लगातार चोट लगाने के कारण वह आत्मा से सुन्दर और आनन्ददायक भाव प्राप्त करता रहता है, इस प्रकार लगातार चोट लगाते

तीनों एक होने लगते हैं। और तीनों के एक होने में आनन्द सुन्दरता और बुद्धि की परिपक्वता के सामान पैदा होते हैं। कर्म के हरमण्डल में यही दशा होती रहती है।

चित्रकार हाथ में लेखनी लेकर चित्र बनाता है। यह चित्र कहाँ है ? वह बाहर नहीं है। हाँ, यह सम्भव है कि ख्यालात बाहर से लिये गये हों लेकिन असली चित्र चित्रकार के अन्तःकरण में है और वह उसकी आत्मा है। जितना वह लेखनी को खींच खींचकर कागज पर नक्शा उतारता है उतनी ही अधिक मन में गति होती है।

मन चोट पर चोट खाता है और आत्मा की ओर आकर्षित होकर उसी की सुन्दरता का नक्शा उतार कर कागज पर रख देता है। चित्र एक बार ही में नहीं बनता। उसमें परिवर्तन होता रहता है। प्रयत्न यह किया जाता है कि भद्दी रेखा और चिह्न मिटते जायें और सुन्दर रेखा और चित्र निकलते आवें। जितना सुन्दरचित्र बनता जायेगा उतना उसका मन भी सुन्दर होता जायेगा और हाथों में उतनी ही सफाई और क़लम में कोमलता के साथ मनोहरता आती जायेगी। चित्र बनाने में चित्रकार वास्तव में अपने आप को और अपने दिल को सुन्दर बनाता जा रहा है। यह सुन्दरता वास्तव में उसी की आत्मा का अक्स है। यह अक्स या प्रतिबिम्ब उस समय दिल पर पड़ता है जब उसमें शुद्धता आती है और फिर उस अक्स का अक्स कलम या हाथ के द्वारा कागज पर प्रकट होता है। तीन सूरतें हैं। पहली सूरत तो आत्मा में है, उसका अक्स हृदय रूपी शीशे में दूसरी सूरत है और हाथ की सफाई के द्वारा कागज पर उसी का तीसरा अक्स है। इस अक्स के उतारने में हाथ, मन और आत्मा तीनों को समता में होना पड़ता है।

कर्म योग का महत्व है। कर्म योगी बिना जुबान खोले हुए शारीरिक, मानसिक और आत्मिक समता का अभ्यास करता रहता है।

चित्रकार की तरह पत्थर काटने वाले का भी हाल है वह भी यही अमल करके अपने हृदय के पर्दो को चीरा करता है कला कौशल के सब काम जिनमें सुन्दरता दिखाई पड़ती है, शरीर, मन और आत्मा की समता के नमूने हैं।

कर्म योग बड़ा विस्तृत विषय है। इसको किसी एक खास काम तक सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि रचना विभि-न्न अवस्थाओं और विभिन्न रूपों का स्थान है। जो व्यक्ति किसी एक काम को हाथ लगाता है और अपने आपको उसके सुन्दर बनाने में भूल जाता है उसको कर्मयोगी की उपाधि दी जा सकती है। यह सबके सब स्थिरबुद्धि और गम्भीर स्वभाव वाले हो जाते हैं क्योंकि आत्मसंयम के सिद्धान्त के साधन में इनको देह मन और आत्मा की समता का सबक मिलतारहता है और यही समता असली अद्वैत और असली अद्वैत का भेद है।

एक आदमी है जो दुनियाँ को शिष्टाचार की शिक्षा देता रहता है वह मौजूदा हालत को बिगड़ी हुई पाकर उसके सुधार में अपने आपको लगा देता है। बेशक ख्याल का अक्स उसके दिल पर पड़ता है और फिर उसका अक्स उसकी जुबान और हाथ पर पड़कर शब्दों और काम के सिलसिले में दूसरों के रहन सहन पर प्रभाव डालकर उनको भी आप जैसा सुन्दर बनाने लगता है और जितने लोग सुधरते हैं उसे उतना ही आनन्द मिलता है। इसके पर्दे में भी वही रहस्य है। कर्म भी मनुष्य में बेसुधि की मस्ती पैदा करता है।

यह दुनियाँ जैसी है वैसी है। इसकी सुन्दरता को बढ़ाना या इसको कुरूप बनाना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। मनुष्य चूंकि अंश मात्र से प्रीति करता है इस कारण से वह कुरूपता के दृश्य देखता है। जिस तरह तुम थोड़ा सा अन्न लेकर अपने स्वाद और इच्छा के अनुसार बनाकर उसका स्वाद लेते हो। उसी प्रकार इस कर्म के मण्डल में किसी एक कर्म को लेकर उसके अभ्यास से तुम समता के ज्ञाता बन जाते हो। अपने चारों ओर के सामान को सुंदर बनाना, अपने पड़ोसी और परायों की दशा श्रेष्ठ करते रहना, भलाई करना, धर्मशाला पाठशाला, अनाथालय, औषधालय आदि बनाना बुराई की जड़ काटना इत्यादि यह सब कर्म योग हैं। पहले यह काम घर से शुरू होते हैं और तब यह विशाल रूप में बाहर फैलने लगते हैं। काम का क्षेत्र बढ़ जाता है और जिस जिस तरह यह बढ़ता है उसी तरह कर्म योगी का दिल भी बढ़ता है और अन्त में यह दशा हो जाती है कि वह सब में फैल जाता है। यही इस योग का ध्येय भी है।

यदि इस तरह कर्म किये जाँय तो यह बंधन का कारण नहीं होते, किन्तु मुक्तिदायक होते हैं। भाग्यवान हैं वह लोग जो ऐसे काम में व्यस्त रहते हैं।

—×—

# उनासीवाँ वचन

## कर्म योग बलिदान है

कर्मयोग क्या है? यह प्रगट करने या प्रगट करने वाली शक्ति के विस्तार या फैलाव का सामान है। यदि कोई व्यक्ति कर्म न करे तो अपने आपको प्रगट कैसे करेगा। वह जीवन

क्या हुआ जो प्रगट होने के गुण से रहित है। प्रगट करने चित्त या मन को एक खास तरफ झुकाना पड़ता है। इसमें ... चित्त की एकाग्रता और चित्त की एकत्रता के साथ चित्त ही को बढ़ने के लिये विवश होना पड़ता है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो जीवन का उद्देश्य ही उन्नति मालूम होता है। यहाँ सिकुड़ने या सीमित होने की गरज तक का पता नहीं मिलता।

आदमी अकेला पैदा होता है। विवाह करता है। एक से दो होता है। सन्तान बढ़ती है। रिश्तेदारियाँ बढ़ती हैं और इसके मिलने वालों की संख्या इतनी अधिक होती है कि फिर गिनना कठिन होता है। यदि यह उन्नति नहीं तो क्या है ?

आदमी पढ़ता लिखता है। मन बुद्धि को विकसित करता है। उसे दुनियाँ भर के अनुभव और जानकारी हो जाती है। वर्तमान समय के कलाकौशल और विद्या प्राप्ति के कठिनमार्ग में भी चित्त लगाता ही है। प्राचीन काल के सैकड़ों वर्षों के अनुभव, जाँचपड़ताल और जानकारी को अपना बना लेता है और भविष्य में जो होने वाला है उस पर भी विजय पाने को लालायित रहता है। यदि इसे बुद्धि की उन्नति न कहोगे तो क्या कहोगे ?

आदमी काम करता है। उसके किसी काम को ले लो। काश्तकारी, बुनाई और राजगीरी कलाकौशल इत्यादि। ऐसे पेशों की दृष्टि से वह इतना बढ़ जाता है कि दूसरे उससे लाभ उठाते हैं और सबके साथ उसके सम्बन्ध जुड़ जाते हैं यहाँ तक कि गाँव, शहर देश और दुनियां को कौन कहे, दूसरे लोकों के कारोबार से भी उसके सम्बन्धों का मेल होने लगता है। बात तो यह साधारण और आसान सी है लेकिन बिना सोचे समझे समझ में नहीं आती। हर काम में बढ़ने का और बढ़कर सर्वत्र

वह अपने बाल बच्चों के विचार से काम करने लग जात अपने स्वार्थ को उनके आधीन बना लेता है। फिर साम...जिक प्रबंध, राष्ट्रीय व्यवस्था और सांसारिक भलाई के ख्याल में बढ़ता ही चला जाता है। किसी के रोके नहीं रुकता। वह सब का हो जाता है और सब उसके हो हो जाते हैं यह ब्रह्म यज्ञ है।

कहावत प्रसिद्ध है। 'घर में दिया जलाकर मंदिर में तब जलाना।"

इस दृष्टांत में इस सर्वव्यापक ब्रह्म यज्ञ का रहस्य छुपा रहता है। यह उसके बड़े ग्रंथ की संक्षिप्त भूमिका है। जो आदमी छोटे पैमाने पर काम न करेगा उसे बड़े पैमाने में काम करना अति कठिन होगा। बाल बच्चों की सेवा लड़के वालों का प्रेम और प्यार, अतिथि सेवा, बलि वैश्य देव पूजा इत्यादि छोटे छोटे काम हैं लेकिन यह बढ़ते बढ़ते इतने बढ़ जाते हैं कि समस्त जगत को घेर लेते हैं। जरा समझने और अहंकार को छोड़ने की आवश्यकता है। बंधन केवल अहंकार में है और उसी का संयम और सुधार आवश्यक है।

जहाँ प्रकृति की रचना पर दृष्टि डालोगे, इस ब्रह्म यज्ञ की व्यवस्था तुमको दिखाई देगी, कोई स्थान या कोई प्राकृतिक शक्ति इनसे खाली नहीं है। (१) जब यह हालत हैं तो क्या मनुष्य को इस यज्ञ के करने की आवश्यकता नहीं है और वह उस से बच कैसे सकता है जब तक वह तंगदिल (संकीर्ण हृदय) व संकीर्ण विचार वाला बना रहेगा उसे सुख कभी प्राप्त न होगा सुख तो बड़े ही में है तंगी में सुख नहीं है।

---

(१) सूरज चांद फलक और तारे खाक बाद और अतिश सब।
तेरे लिये काम हैं करते छूटे तेरा रंज वत अब॥
सब करते हैं तेरी खिदमत दिलो जान से रोजो शब।
समज फर्ज वो प्यारे उनकी तू भी खिदमत में लग अब॥

नियम की पाबंदी, विचार की उच्चता और सभ्यता का ६४५
किसी को कैसे देखने में आयेगा। तुम जितनी उन्नति करते जाते हो, उतना ही तुम मकान, व्यवहार, जीविका उपार्जन के ढंग आदि में अपने इजहार या दिखावे की अक्सी सूरतों को स्थापित करते जाते हो। ये सब और कुछ नहीं हैं किन्तु सबके सब, बिना अपवाद के अर्थात् हर हालत में तुम्हारे ही अक्स हैं। तुम जैसे हो वैसा ही तो दिखाओगे। जो जैसा काछ काछेगा, वैसा ही नाच नाचेगा। ऋषि वाक्य है—

कुर्व्वनेवेह कर्माणि जिजीविशेत शतम् समाः

जो व्यक्ति लापरवाही में अपना समय खोता है वह बड़ा मूर्ख है और जो कर्म अपना जी चुराता है उसको दण्ड और कठिनाइयाँ भुगतनी पड़ती हैं। कर्म करना प्राकृतिक है। इससे बचकर तुम या और कोई व्यक्ति जा कहाँ सकता है। आज लापरवाही करोगे, कल बुरी तरह मार पड़ेगी। तब राह पर आने लगोगे। कर्म तो करना ही पड़ेगा और भलाई भी इसी में है। कर्म करते हुए अपने आप को दुनियाँ में दिखाते चलो, ताकि न केवल और लोग तुमको देखें किन्तु तुम स्वयं अपने हार्दिक और आध्यात्मिक भावों के अक्स को अपने कर्म के सिलसिले में देखने लगो, ताकि तुमको आनन्द प्राप्त हो।

—×—

# इक्यासीवाँ वचन

## कर्म की कठिनाई

कर्म में परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम में कष्ट होता है कष्ट उठाना कोई पसन्द नहीं करता। मगर यह परिश्रम और कष्ट किसको मिलता है? केवल उसको जो कर्म करने में मन नहीं लगाता। कर्म में मन लगा नहीं कि कष्ट दूर हुए नहीं।

साधारण बुद्धि के लोग शिकायत करते हैं कि कर्म तो हम करने को तैयार हैं मगर कठिनाइयों या रुकावटों को क्या करें। यह बड़ा परेशान करती है। यह शिकायत व्यर्थ व्यर्थ हैं। कठिनाइयों के पर्दों को फाड़ना ही तो कर्म होता क्या है यदि यह रुकावट या कठिनाई न होती तो तुमको अपने परि-श्रम और दौड़ धूप के दिखाने का अवसर कहाँ मिलता? पृथ्वी न होती तो बैठते किस पर। पहाड़ न होते तो तुम खोदते क्या? जितनी कठिनाईयाँ अधिक होंगी उतना ही मन के भावों को एकाग्र होकर उनके दूर करने का अवसर मिलेगा और मन की शक्तियाँ उतनी ही उभरेंगी।

पक्षी अन्डे के अन्दर बंद हैं। अंडा रुकावट का सामान है जिसने उसे बाहर आने से रोक रक्खा है। आवश्यकता है कि वह अन्दर ही अन्दर ऐसी गर्मी पैदा करे कि वह फट जाय। तब वह बाहर निकल कर अपने इज़्हार का खेल दुनियाँ को दिखा सकेगा। वह अगर मूर्ख मनुष्य की तरह अण्डे के अन्दर बन्द रह कर शिकायत करता रहे कि अंडा बाहर निकलने से रुकावट कर रहा है तब तो फिर उससे कुछ न हो सकेगा। अंडे को तो फोड़ना ही है। इसी तरह कर्म करने वालों को रुकावटों पर विजयी होकर अपनी शक्ति को दिखाना है।

रुकावटों को प्रकृति ने समझ बूझ कर पैदा किया है। सत पुरुष राधास्वामी दयाल की वाणी है—

"समझ बूझ हम रचना ठानी।"

'काल रचा हम समझ बूझके, बिना काल नहि कदर जीव के' समय के बिना सफलता नहीं मिल सकती। रुकावटों के नाम से घबराना कैसा। रुकावट ही तो हमारी छिपी पड़ी हुई शक्ति के उभारने का सामान है। अगर यह न होती तो फिर कर्म

को क्या आवश्यकता थी ।

लेकिन तुम यह न समझो कि दुनियाँ में रुकावट ही रुकावट है । प्रकृति का हर पहलू से अध्ययन करते चलो । जहाँ कठिनाई है वहाँ सहूलियत की सहायता की सम्भावना है ।

अन्डे में पक्षी बन्द है । वह अन्तरीय गर्मी को भीतर ही भीतर बढ़ा रहा है । बाहर उसको दूसरा पक्षी बैठा हुआ सेता है । और बाहरी गर्मी पहुंचाता रहता है । कहा गया है "मनुष्य प्रयत्न ईश्वर सहायता ।" आकाश से उसके लिये सहायता मिलती है जो अपनी आप सहायता करता है ।' 'हिम्मते मरदाँ मुद्दे खुदा ।' बीज जमीन में पड़ा । उस पर मनों मिट्टी का बोझ है । वह दबा हुआ है । उसको थोड़ा अखु आने की इच्छा हुई । उसने अपनी अन्तरीय गर्मी को उकसाया । भूमि की अन्तरीय गर्मी ने सहायता दी । वह भीतर ही भीतर कुरेदने लगा । आकाश पर बादल छाये, पानी बरसा, जमीन नरम हो गई और परिश्रम से काम लेने वाला बीज भूमि की छाती को फाड़ता हुआ कोमल, पतले और पीले रंग के रूप में क्षण मात्र में उग आया । वह निर्बल है । उसमें रंग रूप नहीं है । बीज की स्वयं ही क्या सामर्थ थी जो अंखुए की होती, मगर नहीं उसने पुरुषार्थ से काम लिया । असामर्थ्य वाला बन्धन की जंजीर को तोड़ता हुआ बाहर निकल आया । अब प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियाँ, उसकी देखभाल तथा पालन करने के लिये हाथ बाँध कर उपस्थित हो गईं । रंग देने वाली शक्ति उसे रंग दे रही है । हवा उस गर्मी से सताए हुए को पंखा झल रही है । ओस अपने दूध की बूंदें उसके मुंह में टपकाती है । आकाश मण्डल अपना भोजन भण्डार इसके पालन के लिये

खोल देता है और वह पलने लगता है यह स्थूल पर्दे को फाडने का एक दृष्टांत है।

R.S.

# अमृतमयी वाणी

फकीर जुनेद आँखों से आँसू भर कर परमात्मा से प्रार्थना कर रहे थे—मैंने सब कुछ छोड़ दिया अब एक तेरे ही ऊपर नजर टिकी है पर प्यारे यह तो बता कि तेरी नजर भी मेरी तरफ है या नहीं ?

भीतर का परमात्मा बोला—जब तक दूसरे की नजर अपनी ओर न होने में सन्देह है तब तक दूरी बनी ही रहती है। अपनी नजर जमाये रहने में ही सन्तोष कर।

—:o—:o

राहगीर ने पत्थर मारा आम के वृक्ष से कई पके आम गिरे राहगीर ने उठाये और खाता हुआ वहाँ से चल दिया।

यह दृश्य देख रहे आसमान ने पूछा—वृक्ष ! मनुष्य प्रतिदिन आते हैं, तुम्हें पत्थर मारते हैं, फिर भी तुम इन्हें फल क्यों देते हो ?

वृक्ष हंसा और बोला—भाई ! मनुष्य अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाय तो क्या हमें भी वैसा पागलपन करना चाहिए ?

—x—

गत दिनों से शहर में कर्फ्यू रहने के कारण अगले अंक का इन्तजार न करें। व्यवस्थापक

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

था। इससे पहले ही उन्होंने फिल्म Rewind कर दिया था। इसके बाद उन्होंने मुझे कहा, महाराज, बड़ी भूल हो गयी है आखिरी चित्र तो आयेगा ही नहीं।' जब हम दो महीने के बाद भारत लौटते समय बर्मिंघम गये तो श्री दसोंदा सिंह ने हमें सभी चित्र दिखाये और आश्चर्य की बात यह थी कि आखरी चित्र सबसे सुन्दर था। यह श्री दसोंदा सिंह के अगाध विश्वास का फल था। अब उनका विश्वास ज्ञान का विश्वास है। इसलिये उन्हें रूहानियत में अवश्य सहायता मिलेगी।

उसी दिन श्री बक्शीश सिंह और सावित्री के घर पर सत्संग देने के बाद रात्रि को ९ बजे हम श्री किशोर गुप्ता के घर पहुचे। इतने में लन्दन के श्री प्रकाशचन्द्र चौहान अपने सुपुत्र श्री अश्विनी चौहान के साथ हमारे पास पहुँच गए। हम करीब १२ बजे उनके साथ लन्दन के लिये रवाना हो गये। अश्विनी ने इतनी तेज गाड़ी चलायी कि १२० मील की यात्रा एक घण्टे में समाप्त कर दी। रात्रि को हमने श्री चौहान के यहां विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातःकाल १० बजे T.W. A. की उड़ान से लन्दन से न्यूयार्क के लिये रवाना होकर १२ बजे दोपहर न्यूयार्क पहुँच गये। इस मासिक सन्देश में केवल इतनी दौरे की सूचना दी जा सकती है। इससे आगे की सूचना के लिये आप अगले मासिक की प्रतीक्षा करें। इन शब्दों के साथ मैं आपको पुनः इस महीने की सद्भावना और सप्रेम आशीर्वाद देता हूँ और आपकी सर्वांगीण प्रगति की शुभकामना करता हूँ। सबको राधास्वामी!

आपका फकीरमय
मानव

—x—

[गत माह नव-दिस० के पृष्ठ ६० से आगे राधास्वामी योग]

लेकिन क्या उस बीज की कठिनाईयां समाप्त हो गयीं नहीं अभी उसे तरह तरह के संकटों से पार होना है। भय है कि कहीं कोई पशु उसे चर न जाय अन्यथा उसका होना न होना एक सा हो जायेगा। लेकिन प्रकृति उसको सहायता देती रहती है। माली ने उसके चारों ओर बाढ़ लगा दी ताकि गाय बैल मुंह न मार सकें। यह भी बन्धन है लेकिन इस बन्धन का उद्देश्य पौधे का पालन पोषण है। उसे चारों ओर हाथ-पांव फैलाने की आज्ञा नहीं है। वह जमीन पर रहे और चारों ओर से घिरा रहे। उसका मुंह केवल आकाश की ओर हो। वह आकाश से अपना भोजन ले और आकाश की ओर बढ़ता चले पौधा वृक्ष बन गया। जमीन की तह से ऊपर आ गया। बाढ़ तोड़ दी गयी। बंधन की दशा समाप्त कर दी गई।

अब उसमें इतनी शक्ति है कि पशुओं के आक्रमण से वह स्वतन्त्र है। पशु लाख उससे अपने सींग और कन्धों को टकरायें किन्तु उसका बाल बांका नहीं हो सकता। अब वह वृक्ष है वृक्ष के रूप में खड़ा हुआ खड़ा है। क्या अब उसे करना धरना नहीं है? यह कौन कहता है? अभी तो उस वृक्ष को ब्रह्म यज्ञ का काम करना है। वह बढ़ा। अगणित शाखायें और पत्ते अपने अन्दर से निकाले, जिन पर पक्षी और बन्दर बैठकर कलोल करते हैं। उसकी छाया में कितने ही लोगों को आराम मिलता है। यह ब्रह्म यज्ञ की प्रारम्भिक सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी में वह फूल देता है। यह आहुति देना है। तीसरी में वह फल उत्पन्न करता है जिनको हजारों ही लोग खाते हैं। यह यज्ञ का फल है जो उस वृक्ष को नहीं मिलता किन्तु दूसरों के हिस्से में आता है. जो उस वृक्ष का

फल खाते हैं, उसका बीज ले जाते हैं। फलों में यह असंख्य बीज पैदा होते है और यह अपनी बारी पर वैसे ही उसी जैसा वृक्ष पैदा करते हैं। यह सब मिल मिलाकर उसी की तरह सुन्दर ब्रह्मयज्ञ रचने लगते हैं और वह तुच्छ और सामर्थ्यहीन वृक्ष इस तरह कर्म की श्रेणियों से गुजरता हुआ बहुत विस्तार कर लेता है। यह उसके दिखावे की दशा और इतिहास है।

वृक्ष अपने लिये कुछ नहीं करता। वह औरों ही के लिये अपने को प्रगट करता है। और सब उसी के रूप हो जाते हैं और वह अपने रस, स्वाद और फल की दृष्टि से दूसरों के रग रग और रेशे रेशे में घुसता हुआ सबका हो गया और सब उस के हो गये। अब वह किसी को कहे कि वह उसका रूप नहीं है तो कोई उसे कैसे कह सकता है कि वह सबका रूप नहीं हुआ।

यह कर्म योग की फिलोसफी है। कर्म योगी का काम इस तरह होता है। वह कर्म करता है कर्म के फल की इच्छा नहीं करता।

बिरछा फले न आप को, नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारनें संतन धरा शरीर॥

जो कठिनाई या परिश्रम के नाम से जी चुराते हैं वह कैसे बड़े बनेंगे। डरो नहीं, कर्म करो और कर्म के सिलसिले में सच्चा आनन्द, सच्चा जीवन और सच्चे ज्ञान को प्राप्त करो। यह राधास्वामी मत की शिक्षा है।

—×—

# बयासीवाँ वचन

## कर्म में बुद्धि और आनन्द

सत्यम् चित्तम्, आनन्दम् । सत्य है । सत्य के साथ चित अर्थात् चैतन्यता है और सत्य ही में आनन्द है । सत्य क्या है ? सत्य जीवन है । जीवन दिखावा है । दिखावा कर्म द्वारा होता है । बिना कर्म के जीवन कहाँ ! और बिना कर्म के जीवन के दिखावे का सामान कहाँ ! यह बच्चा भी समझ सकता है ।

लड़का उत्पन्न होता है और उत्पन्न होने के बाद से ही वह हाथ पाँव मारने लगता है । हाथ पाँव मारना कर्म ही तो है । इन बच्चों से ज्ञानियों को भी बड़े बड़े सबक मिलते हैं । बच्चा माँ का दूध पीता है । माँ यदि पास नहीं होती तो अपना अँगूठा ही चूसने लगता है । यह क्या है यह वास्तव में प्रकृति की शिक्षा है कि हमको अपने अन्दर अपने ही से भोजन मिलता है, किन्तु यह इतना सूक्ष्म विषय है कि अभी इसका इशारा करना भी उचित प्रतीत नहीं होता । अभी केवल कर्म ही के विषय पर ध्यान देना है ।

लड़का बढ़ा । फिर चलने का इच्छुक हुआ । खाट छोड़ी । माँ बाप की गोद को भी जवाब दे गया । ज़मीन पर घुटने के बल चलने लगा अथवा पशुओं की तरह चार घुटनों के बल के सहारे गति करने लगा । गति में तीन हालतें हैं । कर्म, विवेक शक्ति और प्रसन्नता । वह चलता है । चलने के बुद्धिगत अनुभव में दक्ष होता जाता है और साथ ही प्रसन्न भी होता है । माँ पकड़ने दौड़ती है । वह किलकारी मारकर फिसल जाता है और जोर से खिल खिलाता है । फिर वह धीरे-धीरे उठने लगता है । उठा और धम से गिर पड़ा । फिर उठा और फिर

गिरा । अब धीरे धीरे उठकर खड़े होने की शक्ति आ शक्ति के आते ही उसने चलना आरम्भ किया । कभी खाट के पाये को पकड़ कर चलता है कभी माँ बाप का हाथ थामकर चलता हैं। जब सहारा नहीं मिलता तो मुंह के बल गिर पड़ता है । यदि कोई पास न हो तो फिर चुपके से चलने का प्रयत्न करता है । यदि दुर्भाग्य से कोई दिखायी दे गया तो उस ने वहां से ही चिल्लाना और रोना शुरू कर दिया उसका यह रोना और चिल्लाना उसी तरह की शिकायत है जैसे बड़ा आदमी व्यर्थ ही कठिनाईयों का उलाहना करते रहते हैं । अब लड़का चलने लगा । गिरते पड़ते उसमें शक्ति, समझ-बूझ और शक्ति के कारण प्रसन्नता आने लगी । सत्यम् चित्तम्, आनन्दम गिरना पड़ना जरूरी बात है । कर्म में भूल चूक तो होती ही रहती है । यदि लड़का न गिरे और कर्म करने वाला गलती न करे तो वह अभ्यास कैसे करेगा और उसके अन्दर की दबी हुई शक्ति का उभार कैसे होगा । भूल चूक, गलती और गलत समझना यह सब प्राकृतिक व्यवहार के तरकीबी अंग हैं। कबीर साहब का कथन है—

मारग चलते जो गिरे, ताहि न लागे दोष ।
कहें कबीर बैठा रहे, ता सिर करें कोस ॥

अब वही लड़का पढ़ने जाता है। पाठ याद करता है। भूलता है । दंड पाता है । कठिनाईयों पर विजय पाकर बुद्धि और प्रसन्नता प्राप्त करता जाता है। इसी प्रकार जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्तिम श्रेणियों तक ध्यान दो। हर जगह और हर काम में यही दृश्य तुमको दिखायी देगा । विषयानन्द ब्रह्मानन्द, ज्ञानानन्द आदि में यह कर्म ही चित्त और आनन्द

कर्म को बुरा न कहो। बिना कर्म के कोई भी काम नहीं हो सकता। सफलता नाम है काम के पाने का। काम ही उद्देश्य है। कर्म ही से इष्ट सिद्धि, नवनिधि और ऋद्धि मिलती है। यह सब क्या है! सत्यम्, चित्तम्, आनन्दम्।

—:०:—

# तिरासीवाँ वचन

## भीतर और बाहर का कर्म

कर्म भीतर और बाहर का व्यवहार है। वर्तमान लोक में जीवन बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के कारबार पर निर्भर है। मनुष्य अन्तर मुखी और बाहर मुखी दोनों ही है। इसी प्रकार इस रचना के समस्त प्राणी हैं। तुममें से बहुत लोगों ने दोमुहे साँप देखे होंगे, उसका एक मुँह सिर की ओर और दूसरा पूंछ की ओर होता है। उसकी शारीरिक बनावट इस प्रकार की है कि अधिकतर तुम यह पहिचान नहीं कर सकते कि किस को सिर कहें और किसको पूंछ कहें। यह व्यवस्था प्रत्येक जीव में है। प्रत्येक जीवधारी या निर्जीव इसी प्रकार का बना हुआ है। जीवधारी और निर्जीव यह केवल आपेक्षिक शब्द हैं और अपेक्षा के मण्डल में प्रयोग किये जाते हैं। विशेष शक्ति की कमीबेशी की दृष्टि से उनका प्रयोग होता है।

चूंकि हममें तुममें अन्तर मुखी और बाहर मुखी होने का गुण है। इस कारण से हम सबको दोनों ही प्रकार के व्यवहार करने पड़ते हैं। जो बाहर मुखी हैं वही अन्तर मुखी हैं। यह विचित्र बात है। तुम सब जागते हो तब तुम बाहर मुखी होते होते हो। जब सोते हो अन्तर मुखी बनते हो। यह तो कम से कम तुम समझ सकते हो लेकिन अन्तिम रूप से न समझ लो

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

कि जाग्रत बिल्कुल बहिरमुखपना और स्वप्न बिल्कुल अ:
मुखपना है। जाग्रत में तुम देखते हो कि इन्द्रियों का रुख बाहर की ओर खुला है। आंख, नाक, कान के छिद्र बाहर की ओर हैं। स्वप्न में वह अन्तर की ओर रहते हैं। लेकिन यह अमल क्या है? तुम खाते हो। भोजन को अपने अन्दर में डालते हो, किन्तु विजातीय पदार्थ को निकाल भी तो देते हो। तुम दूसरों की बातों को सुनते हो अर्थात् बाहरी शब्दों को कानों द्वारा अपने अन्दर रख लेते हो, किन्तु तुम बोलते भी तो हो। क्या दूसरों को जो बाहर हैं अपनी बात नहीं सुनाते? तुम एक प्रकार के बर्तन हो। बाहर से सामान लेकर उसमें डालते हो और फिर अपने अन्दर से सामान निकाल कर औरों को भी देते हो। यह विपरीत काम हर समय तुम बराबर करते रहते हो। एक क्षण भी इससे असावधान नहीं रहते हो। साँस जाती है और साँस आती। छिद्रों (रोम) की राह से बाहर के प्रभाव तुम में प्रवेश करते हैं और छिद्रों की राह से तुम्हारे अन्तरीय प्रभाव बाहर की ओर जाते हैं। इस पर विचार करो तो तुमको मालूम हो जायेगा कि तुम सिर से पैर तक छिद्रों ही से बने हो। यह छिद्र बाहरी और भीतरी रुख रखते हुए लेने और देने का काम करते रहते हैं। एड़ी से लेकर चोटी तक प्रत्येक जीव की यही दशा है। जो लेता है वह देता भी है। जो देता है वह लेता भी है। इन्द्रियों को देखो, मन को देखो और जिसे चाहो उसे देखो। प्रत्येक वस्तु को यही काम करते पाओगे। यह द्वन्द है। इन्ही की दृष्टि से सूफी, सन्त और महात्मा दुनियाँ को द्वन्द स्थान कहते हैं। यदि तुम भी इस दुनियाँ को द्वंद स्थान कहते हो तो इस विषय को अच्छी तरह समझ लो। फिर कर्म के सिलसिले में आध्यात्मिक उन्नति का

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

रहस्य समझ में आ जायेगा। हम यहाँ लेने ही के लिये नहीं आये हैं किन्तु देने के लिये भी आये हैं। जब यह प्रकृति का मन्तव्य या प्रयोजन है तो फिर हम कंजूस क्यों बनें। जो व्यक्ति इसको नहीं समझता वह अब तक भूल में पड़ा हुआ हैं और जिसने इसे समझ लिया है और इस तरह समझ कर काम करता हैं तो वह कम से कम आत्म ज्ञान के मार्ग में है।

पत्थर, कंकड़ और अणु परमाणु की यही दशा है। इससे कोई भी वंचित नहीं है। यह ऐसा क्यों है? क्योंकि हम दुनियां के हैं और दुनियां हमारी है। यही लक्ष्य है जो तसव्वुफ (अध्यात्म) की जान है। इसी लक्ष्य पर हर बात की समझ निर्भर है।

जो काम हम करते हैं वही सब करते है। यहाँ तक कि ईश्वर तक वही करता है। उससे सृष्टि उत्पन्न होती है और उसी में जाकर लय हो जाती है। यह ईश्वर के सांस लेने का विषय हैं। जो सांस बाहर आती है वह रचना की है। जो अन्दर की ओर वापिस जाती है वह प्रलय का खेल दिखाती है जीवन बाहर को सांस है। मृत्यु अन्दर की साँस हैं। जिन अर्थों में लोग मौत और जीवन को समझे बैठे हैं वह अज्ञान है। इसी अज्ञान को दूर करना कराना है अन्यथा न कोई जन्मता है और न कोई मरता है। मरना जन्मना भी केवल साँस लेना और साँस निकालना ही है।

जो हवा लेता है वह हवा देता है। जो गर्मी लेता है वह गर्मी देता है वह पानी पिलाता रहता है। और भी इसी प्रकार।

जो ईश्वर है वही तुम हो। केवल पैमाने का अन्तर है। जिस प्रकार ईश्वर के साँस लेने से जीव जन्तु पैदा होते हैं वैसे ही तुम्हारे साँस लेने से भी उनकी उत्पत्ति होती रहती है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

जिस तरह उसका शरीर जीव जंतुओं को अपने अंदर लय लेता है वैसे ही तुम भी करते हो। जैसे उसका शरीर जीव जंतुओ का भण्डार है वैसे भी तुम्हारा भी है, किंतु तुम जीव हो, ईश्वर नहीं हो। ईश्वर और जीव में इन सब समानताओं के होने पर भी अंतर है। सावधान! गलती में न पड़ो और न बहको। अभी तुमको ज्ञान की कई सीढ़ी पार करनी है। केवल कर्म करते हुए चले चलो और कर्म के नियम को अच्छी तरह समझ लो; अन्यथा यदि कहीं अभी से जल्दी में पड़कर ब्रह्म बनने के सौदा में पड़ गये तो किया कराया धूल में मिल जायेगा और प्राकृतिकनियम के उल्लंघन में बुरी तरह धर लिये जाओगे।

यह कर्म है। कर्म भीतर और बाहर का आचरण है। यह आचरण केवल प्रगट होने का मार्ग है। तुमको अपने प्रगट होने का तमाशा भली प्रकार देखना और दिखाना है और इसी देखने दिखाने पर ज्ञान की प्राप्ति निर्भर है। तुम केवल देखते दिखाते चलो। जिस जिस तरह इस दिखावे में तुम्हारा अहंकार दूर होता जायेगा, उसी उसी प्रकार असली जीवन, असली ज्ञान और असली आनन्द तुमको मिलता जायेगा। यह तो तुम्हार अधिकार है। कोई तुमसे इस अधिकार को छीन नहीं सकता।।

—×—

# चौरासीवाँ वचन

## अन्तराय और बाहरी व्यवहार

जो दशा शरीर की है वही मन की भी है। यह भी बाहर मुखी और अन्तर मुखी दोनों ही हैं। जब इसकी दृष्टि बाह्य जगत की ओर होती है तब वह बाहर मुखी है और जब इसकी

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

दृष्टि अन्तर में आत्मा की ओर होती है यह अन्तर मुखी है। यह अन्तर मुखी होते हुए बाहरमुखी और बाहरमुखी होते हुए अन्तरमुखी है। इसका पता तुमको स्वप्नावस्था में मिलता है। दूसरों की बातों पर कभी न जाओ। अपने निजी अनुभवों से लाभ उठाओ तब ही इस विषय को अच्छी तरह समझ सकोगे।

क्या स्वप्नावस्था में रहता हुआ मन बाहर के खेल अपने अंदर नहीं देखता? यदि साहस हो तो इससे इंकार करो मगर तुम इंकार कर कैसे सकते हो। तथ्य तो तथ्य ही हैं।

एक ही वस्तु है जो अन्दर और बाहर दोनों ही तरह से प्रगट है। वह अंदर भी रहता है और वही बाहर भी रहता अंदर भी ब्रह्म है और बाहर भी ब्रह्म है। ब्रह्म कहते हैं सर्व व्यापक नियम को। इसे तुम सीमित कैसे कर सकते हो। जो व्यापक है उसका हर जगह रहना आवश्यक है। मछली के बाहर भी समुद्र का जल है और मछली के अन्दर भी समुद्र का जल है। तुम्हारे बाहर भी प्राण वायु है और अंदर भी प्राण वायु है। तुम इस प्राण वायु के अंदर और बाहर रहते हुए समुद्र की मछली की तरह इस प्राण वायु की नदी में डुबकी मारकर अंदर चले जाते हो और सिर उभार कर फुदकते हुए बाहर आ जाते हो। अंदर भी वही और बाहर भी हुई।

यही दशा आत्मा की भी है जिसे राधास्वामी मत में सुरत कहते हैं। अभी तक तुमको आत्मा की समझ नहीं है। इस कारण इस विषय पर अधिक क्या कहा जाय। यह सुरत ठह-राव और निश्चलता की अवस्था है जिसका पता यद्यपि हर कार बार में मिलता है लेकिन अधिकतर यह सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद की दशा में समझ में आती है। वही अंदर और बाहर का बीज है। यह तुम में भी है और तुम्हारे ब्रह्म में भी है। जीव और ब्रह्म इस दृष्टि से एक हैं।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

यहाँ जो वस्तु है वह अंदर और बाहर दोनों के आ है और यह आधीनता उसकी आंशिक और सीमित रूप क कारण से है।

अंदर और बाहर क्या है? ब्रह्म ही ब्रह्म है। अब कहो तुम किस समय इस ब्रह्म से पृथक रहते हो। एक क्षण के लिए भी तुम उससे अलग नहीं होते। अलग होना असम्भव है। हां भ्रम और अज्ञान से जैसा चाहो कहते सुनते रहो। जब जब तुम इसके साथ रहने और होने से इंकार करोगे तब तब तुम को हानि उठानी पड़ती है।

ऋषियों का कथन है—"माहम ब्रह्म निराकुर्यामि मामा ब्रह्म निराकुर्वंत" अर्थात् 'ब्रह्म हमको नहीं छोड़ता। इस कारण हमको भी चाहिए कि हम एक क्षण के लिये भी इस ब्रह्म को नहीं छोड़ें।'

कर्म के सिलसिले में यही ध्यान तुमको भी रखना चाहिए ब्रह्म तुमसे अलग नहीं होता। फिर तुम इससे अलग क्यों होते हो? देखो! ब्रह्म ने स्वयं गुप्त होकर तुमको प्रगट किया है। क्या अब यह तुम्हारा धर्म नहीं है कि तुम अपने आपको गुप्त और ब्रह्म को प्रकट करो। प्रगट तो वह अब भी है। वही गुप्त है, वही प्रगट है, वही हर जगह है। वह तुम्हारे आधीन कब है। हाँ, तुम अपने ही लाभ की दृष्टि से उसे प्रगट करते हो। उसका प्रगट करना यह है कि अंतरीय और बाहरी तौर पर उसका ख्याल रख कर इस संसार के जीवों के साथ प्रेम का व्यवहार करो, क्योंकि इन्हीं सबके समुदाय का नाम ब्रह्म है। यह कर्म का असली अभिप्राय है।

—×—

# पिचासीवाँ वचन

## गुरु स्वरूप के साथ कर्म

अब तक जो कुछ कहा गया है वह केवल फिलौसफी और बुद्धि की दृष्टि से कहा गया है। अमली या क्रियात्मक रूप से किस प्रकार व्यवहार किया जाय, अब उसकी बारी है।

ब्रह्म सर्व व्यापक है। उसका समझना कठिन काम है। वह मन वाणी से परे की दशा है। वहां तक हर एक का पहुँ-चना सम्भव नहीं है। यह हम नहीं कहते कि कोई वहां तक नहीं पहुंचता। यह अनुभव द्वारा पहिचाना जाता है, किन्तु फिर भी सुगम नहीं है।

सरल उपाय यह है कि गुरु को ब्रह्म रूप जानकर उनसे संबंध पैदा करो और अपने कर्म उन्हीं की भेंट चढ़ाते रहो।

गुरु ब्रह्म और यह विशेष रूप में ब्रह्म है। ब्रह्म तो केवल सामान्य रूप से ब्रह्म है, यह विशेष रूप से है। सामान्य से इतना लाभ नहीं होता जो विशेष से होता है। इसका दृष्टांत पहले दिया जा चुका है। चन्दमा के उजाले में चोरी, डाका, बुरा, भला सब कुछ होता है। चन्द्रमा किसी को नहीं रोकता रोकने का काम तो केवल चेतन विशेष अर्थात् मुख्यतया गुरु का है। वाणी है :—

"ईश्वर को सर्वत्र आकाश और पाताल में व्यापक कहते हैं। पर किसी को नहीं मिलता, फिर उसके सर्वव्यापक होने से जीव को क्या लाभ ! क्योंकि वह रूप किसी को प्राप्त नहीं होता और जो मालिक ने सत्‌गुरु रूप धारण किया, तो उस रूप से जीवों को दर्शन भी देता है और समझाकर अपनी दया के साथ मुक्ति की कमाई कराकर निज घर में पहुँचाता है और अपने निज रूप का दर्शन देता है। अब गौर

करना चाहिए कि सत् गुरु रूप बड़ा है कि व्यापक रूप ! इससे का कारज नहीं बनता और सतगुरु रूप से जिस वक्त कि जीव को सत्संग और सेवा करके उस पर निश्चय आ गया, तो सहज में काम बनता है। बिना मिलाप सतगुरु वक्त के किसी को मालिक का पूर्ण निश्चय नहीं हो सकता है। और जब पूरा निश्चय नहीं हुआ तो पूरी प्रीति ओर परतीत भी नहीं आई और जब प्रीति और परतीत भीं नहीं, तो आधार कैसे होगा। फिर जो कुछ करतूत परमार्थी बनेगी, वह कर्म का फल चौरासी योनि में देगी पर सच्चे मालिक की भक्ति कभी नहीं आवेगी, जब तक सत्गुरु वक्त के न मिलेंगे। और उनके वचन पर निश्चय न आवेगा।"

गुरु ही विशेष रूप से ब्रह्म के प्रत्यक्ष रूप किंतु ब्रह्म पद से ऊँचे के प्रत्यक्ष रूप हैं। शास्त्र कहते हैं—'ब्रह्म विद ब्रह्मो भवति।" जो ब्रह्म का ज्ञान रखता है वही ब्रह्म है। सूफियों का भी यही कथन है। और जब इस बात को सब मानते हैं तो फिर क्या कारण है कि गुरु को ब्रह्म समझ कर उनकी वन्दना न की जाय और उन्हीं को ब्रह्म न जाना जाय।

और कर्म इस प्रकार विश्वास पूर्वक गुरु के अर्पण होता रहता है, वह निष्काम होगा और अहंकार का उससे नाश होता जायेगा।

—:o:—

# छियासीवाँ वचन

## हिन्दू और अहिन्दू दृष्टि से कर्म

हिंदुओं का आदर्श कर्म के सम्बन्ध में सदैव से यही रहा है कि जो कर्म किया जावे वह ब्रह्म के अर्पण हो।

ऐसा कर्म मुक्ती देता है नहीं तो बन्धन का कारण बन जाता है। लेकिन दूसरों (अहिंदू) को इस दृष्टिकोण की समझ अभी तक नहीं आई विशेषकर यूरोप, जिसे अपनी सभ्यता पर गर्व है, इसके महत्व का बिल्कुल ज्ञान नहीं रखता।

हिन्दू हर काम के समय पर धोते हैं और पैरों को नंगा रखते है। यूरोपियन पैरों को नंगा कभी नहीं रखते। सिर को अवश्य नंगा रखते है। उनका विचार है कि सिर को ठंडा, और पैरों को गर्म रक्खो। यह डाक्टरी का सिद्धाँत उनके यहां है, जिसकी जड़ शारीरिक स्वास्थ्य के विचार पर है। यह ख्याल गलत नहीं हैं। हिंदुओं का व्यवहार इसके विरुद्ध नहीं हैं। आर्यवर्त के हिंदू प्राय: सिर पर पगड़ा रखते थे और पैरों को नंगा। हर समय पैरों को धोते थे। खाने से पहले, मार्ग चलने के बाद, पैरों को धोना यह उनका सदा से दस्तूर चला आता हैं और अब भी उनकी अधिकतर संख्या इस क्रिया को कर रही हैं।

इसका कारण क्या था ? कारण यह था कि हिंदुओं को सिर की रक्षा का अधिक ख्याल था। यह भी वैद्यक का सिद्धाँत है। यूरोप कहता हैं कि ठंडा सिर विचार के योग्य रहता हैं। यह ऐसी सच्ची बात है कि उसको झूठा करना मूर्खता हैं। इसी प्रकार पैरों का ठंडा होना बीमारी की निशानी हैं। पैर अगर गर्म रहेगा तो उसकी गर्मी सिर की ओर आकर्षित होगी, मानो कि यूरोपियन पैरों की गर्मी को सिर तक पहुंचाने के इच्छुक रहते हैं मगर हिंदू इसके विरुद्ध करते थे। वह पैरों को ठंडा रखते थे, ताकि सिर की गर्मी पैरों की ओर आकर्षित रहे।

पैरों को सिर की गर्मी से गर्म रखना हिंदुओं का और पैरों की गर्मी से सिर को गर्म रखना यूरोपियन सभ्यता का गुण हैं।

सिर में सज्जनता और सभ्यता है। पैरों में नीचता और स्थूलता है। अब सोचो सच्ची बात कौन सी है। सिर की सज्जनता और सभ्यता और गर्मी का सारी देह में हिस्सा देना अच्छा है या पाँवों की नीचता, स्थूलता और गर्मी को सिर में पहुंचाना अच्छा है। इसी एक बात को समझ लो और दोनों सभ्यताओं के आदर्श को किसी सीमा तक समझ लोगे। उद्देश्य तो दोनों का यही है कि गर्मी समतुल्य रहे. किन्तु सज्जनता की सफलता को अवसर देना बेहतर है या नीचता की स्थूलता को।

ब्रह्म दुनियाँ का सिर है। हिन्दू सीधे सीधे उससे लाभ उठाते थे। दुनियाँ जगत् का पैर है। यूरोप उससे लाभ उठाते रहने का इच्छुक है। दूसरे शब्दों में हिन्दू धर्म के पुजारी हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में ब्रह्म ही सब कुछ हैं। यूरोप दुनियाँ का पुजारी है क्योंकि वह दुनियाँ और दुनियां ही के पदार्थों को सब कुछ समझता हैं। हिन्दू शास्त्रों में रचना के तीन मण्डल माने गये हैं। दिव्, आकाश और पृथ्वी। दिव् ब्रह्म है, और यही सबका सिर है। इसका ध्यान रखना इनका आदर्श था। सिर में समस्त शक्तियाँ हैं। सूक्ष्म इंद्रियों का भण्डार सिर ही है। पैरों में केवल चलने ही की शक्ति रहती है। इसी दृष्टि से आदि में दान आदि देने को प्रथा ब्राह्मणों तक ही सीमित थी, जो ब्रह्म वादी या सिर ही के उपासक थे। अब वह प्रणाली बिगड़ गयी है। यूरोप का हाल इससे उल्टा दूसरे प्रकार का है। वह देह के उपासकों की सहायता करना मुख्य समझता है। इसलिये यूरोप में सिर और पाँव में भेद नहीं हैं।

एक समय था जब हिन्दू उन्नति के शिखर पर थे, अब वैसी हालत नहीं रहीं है। आज कल यूरोप उन्नति पर है

लेकिन उसकी उन्नति नहीं है और न उसका ध्यान शान्ति और सुख की ओर है। क्या हुआ अगर हजार वर्ष के लिये उसने उन्नति प्राप्त कर ली। दुनियाँ में कभी आत्मा का समय आता है कभी शरीर का। दशायें बदलती रहती हैं, किन्तु असलियत का प्रेमी जानता है कि सच्ची भलाई का सामान कहाँ है। सिर में है या पैरों में हैं। सिर के ठीक रहने से पैर ठीक रहता है। केवल पैर की भलाई ही से सिर की भलाई की आशा रखना भूल और अज्ञानता है।

यह सच है कि यरोप ने गुलामी आदि के रिवाज की दुनियाँ से जड़ उखाड़ दी, मगर यह असली उदारता के विचार से नहीं है। यह केवल समय की मसलहत और वर्तमान परि-स्थितियों की दृष्टि से किया गया है जिसे पोलिटीकल या सोशल एकोनोमी कहते हैं। जब गुलामों का रखना कठिन हो गया, उस समय उनकी स्वतन्त्रता का विचार उत्पन्न हुआ। अभिप्राय यह कि यूरुप में जो काम किया जाता है वह इसी एकोनोमी को सन्मुख रखकर किया जाता हैं। वह केवल एक दृष्टांत था। दृष्टाँत का केवल आवश्यक भाग लिया जाता है दूसरे भाग को छोड़ दिया जाता है।

यूरोप समय-२ की नीति को दृष्टि में रखकर काम करता है। हिन्दू जो काम करते थे सिद्धाँत को दृष्टि में रखकर काम करते थे। इसी प्रकार धर्म का विषय है। धर्म नाम है उसका जो धारण किया जाय और धारण करना केवल सिर का काम है पैर का काम नहीं है। हिंदू धर्म की दृष्टि आत्मा पर रही है। यूरोप की दृष्टि सदा दुनियाँ और शरीर पर रहती हैं। आत्मा को महत्व देना हिंदुओं का स्वभाव हैं। दुनियाँ और शरीर को मुख्यतया देते रहना यूरोप का स्वभाव हैं। इन दोनों की सभ्यता में यह प्रत्यक्ष अन्तर हैं।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

आत्मा की पूजा आर्य मार्ग है। अनात्मा यानि आत्मा की पू ा अनार्य मार्ग है। एक देवताओं का नियम हैं। दूसरा राक्षसों का नियम है, जिसकी एक अति सुन्दर कथा छांदोग्य उपनिषद में इन्द्र और विरोचन के आचार विचार और जीविका उपार्जन के ढग के बारे में आई हैं। (वह कथा नानक योग की भूमिका में दी जा चुकी हैं)।

कर्म तो यूरोप करता हैं। हिंदू इस मामले में उसकी समानता नहीं कर सकते,मगर वह कर्म ही कर्म हैं, जो बंधन की जंजीरों को बढ़ाता जाता हैं। उसका परिणाम बेचैनी और परेशानी के सिवाय कुछ नहीं होता।

लेकिन जिस प्रकार यूरोप ने इस कर्म के बारे में भूल की उसी प्रकार हिंदुओं ने भी भूल की। दोनों ही अन्तिम हालत में चले गए। यह कारण हैं कि सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से हिंदुओं को हैरानी, परेशानी और कष्ट हुआ।

यूरोप तो बिल्कुल ही बाहर मुखी हो गया और हिंदू बाहरी कर्म के महत्व को न समझकर अन्तर मुखी अवस्था का राग अलापते रह गये और उससे भी बंचित हो गये।

यह पहले समझा दिया गया हैं कि किसी एक साधन से असली उन्नति नहीं होती। आपेक्षिक मण्डल में हर आदमी को आपेक्षिक दर्जे का ध्यान रखना पड़ता हैं। भीतर बाहर दोनों ही प्रकार के आचरण से सच्ची भलाई होती हैं। राधा स्वामी मत इसी गलती के सुधारने की शिक्षा देता हैं।

जो आदमी बिल्कुल ही बाह्य दृष्टि वाला होता हैं, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता और जो बिना समझे बूझे केवल अन्तर मुखी बृत्ति का साधन करता हैं, वह बाह्य जगत के अनुभवों से बंचित रह जाता हैं जब तक दोनों पल्ले बराबर

नहीं होते शान्ति नहीं मिलती और शान्ति न मिलने से आध्यात्मिक आनन्द भी हाथ नहीं आता। फिर आत्म पद की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव होगी। दुनियाँ में अन्तरीय और बाहरी दोनों ही प्रकार के सामान है। ब्रह्मवादी ऋषि तक यह कहते आये हैं कि "आत्म क्रीड़ा आत्मर्थी क्रियवाण" अर्थात् ब्रह्म में आनन्द प्राप्त करो, ब्रह्म के ध्येय को प्राप्त करो। यह कर्म करने वाले के लक्षण हैं। कर्म करते हुए अकर्मिक बनो अकर्मिक बने हुए कर्म करो। बन्धन में मुक्ति और मुक्ति में बन्धन रक्खो। इसी का नाम अभ्यास है और कर्म करने वाले सेवक का यही आचरण है।

कबीर निरबंधन बंध रहा, बंध निरबंधन होय।
कर्म करे कर्त्ता नहीं, दास कहावे सोय।।

इस प्रकार का कर्म करने वाला संसार के दुख और सुख से स्वतन्त्र रहता है। वह इनको बिल्कुल परवा तकनहीं करता क्योंकि वह अपने कर्म को गुरु के अर्पण करता हुआ सेवा के कर्त्तव्य का पालन करता है। न किसी की शत्रुता का भय है न किसी की मित्रता की आशा है।

निः बैरी निः कामता, उपजै छोभ न ताप।
हर्ष शोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप।।

ऐसा कर्म करने वाला सेवक अपने कर्म के फल की तनिक भी इच्छा नहीं रखता। चूंकि वह इच्छा की जड़ काटकर कर्म करता है, इस कारण से उसे दुख क्यों होने लगा?

भोग मोक्ष माँगू नहीं, भक्तिदान गुरुदेव।
और नही कुछ चाहिए, निशदिन तेरी सेव।१।
सेवा फल माँगे नहीं, करे सेव दिन रात।
कहें कबीर ता दास पर, काल करे नहि घात।२।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

आस करी बैंकुन्ठ की, दुरमति तीनों काल ।
शुक्र कहीं बलि न करी तासों गयो पाताल ।३।

—×—

# सतामीवाँ वचन

## निष्काम कर्म में सब कुछ है

उपनिषद कहते हैं "स्वाभाविक ज्ञान बल क्रिया च ।" ज्ञान बल और क्रिया यह प्राकृतिक गुण है ।" ज्ञान चित है । बल अस्तित्व है और क्रिया कर्म है । इससे कौन बचा है । कर्म करने वाला अगर निष्काम कर्म करे और मन, वचन, कर्म तीनों ही गुरु के अर्पण करता रहे तो उसमें अपने आप ही ज्ञान, बल और आनन्द उत्पन्न होगे । यह तो इसमें अब भी हैं । हाँ, निष्क्रियता की हालत में पड़े हुए हैं । हाथ पैर मारा नहीं कि वह आप ही आप उमड़ खड़े हुए नहीं, यह नियम है । यही कर्म का साधन है । यह वह परमार्थ है जो असल में अपना ही स्वार्थ है और दूसरों की भलाई में अपनी ही भलाई है, क्योंकि यह दूसरे किसी हालत में अपने से अलग नहीं हैं । मगर गुरु को ब्रह्म रूप, जगत रूप, सर्व रूप मानकर उन्हीं के आसरे ऐसा कर्म बनता है और बन सकता है । इस कारण से बार-बार इसका आदेश किया जाता है । जो ब्रह्म का है ब्रह्म उसका है । जो गुरु का है गुरु उसका है । ब्रह्म और गुरु दोनों ही एक हैं ।

गुरु समर्थ सर पर खड़े, काहि कमी तोहि दास ।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छाँड़े पास ।।१।।
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहुँ काल ।
पलक एक में प्रगट होय, छिन में करूँ निहाल ।।२।।

जिस तरह एक बूंद के पीछे समुद्र की शक्ति रहती हैं, जिस प्रकार एक किरण के पीछे सूर्य मौजूद रहता हैं, वैसे ही निष्काम भक्ति या सेवक के पीछे गुरु ब्रह्म की शक्ति रहती हैं।

—×—

# अठासीवां वचन

## उपासना

उपासना के शब्दार्थ और भावार्थ दोनों बता दिये गये। अब उसकी पुनःव्याख्या की जाती हैं। उपासना का अर्थ अब इस समय में प्रेम और भक्ति है और यह मन का स्वाभाविक गुण है। किसी को मन देना प्रेम और भक्ति है। मानसिक सेवा या मानसिक प्रेम को भक्ति कहते हैं। यह ध्यान के रूप में प्रत्यक्ष होती है। भक्ति संस्कृत धातु भज से निकला है। इसका शाब्दिक अभिप्राय सेवा है। इसी कारण से हम भक्ति को मानसिक सेवा कहते हैं। इसका प्रारम्भिक उपासना (उप + आसन) अर्थात् निकटवर्ती होने और संगत से होता है। इसकी बीच की हालत दर्शन और आंखों से गुरु की दिव्य मूर्ति का बार ध्यान से देखते रहना है। यह बाहरी दृष्टि साधन। है चित्त में उस मूर्ति के ध्यान को पक्का करके उस पर इस प्रकार पूर्णतया स्थिर हो रहने से उसका अन्त हो रहता है, इस प्रकार के सिवाय इसके और किसी का भी ध्यान न आने पावे और उसमें लय अवस्था प्राप्त हो जाय। प्रारम्भ में केवल इतना बाहरी तौर पर समझ कर चलने की आवश्यकता है। धीरे धीरे इसकी अधिक व्याख्या होती जायेगी।

भक्ति या प्रेम चित्त का स्वभाविक गुण है जिस पर सृष्टि की व्यवस्था निर्भर है। जो शक्ति कि एक दूसरे से मिलाती

और उसमें मेल मिलाप पैदा करती है, वह भक्ति ही है
प्रेम कहते हैं। यह आकर्षण शक्ति है, जो दो हृदयों मे[illegible]
और एकता का कारण होकर उन्हें परस्पर इस प्रकार जोड़ देती है कि उनकी पहिचान करना कठिन हो जाता है। यह उम की महिमा, बढ़ाई और प्रभुता है।

इसका आचरण दो प्रकार से होता है। संस्कृत में इन्हें राग और द्वेष कहते हैं। यह शब्द प्रेम और घृणा के पर्याय-वाची अर्थात् समान अर्थ वाले हैं। जिनको असली समझ नहीं है। वह इन्हें बिल्कुल एक दूसरे के प्रतिकूल समझते हैं, लेकिन राग और द्वेष व प्रेम और घृणा असल में एक ही शक्ति के प्रगट करने की दो शक्तियाँ हैं, जो रचना की व्यवस्था करती है और हर जगह उनका व्यवहार और अधिकार है। यदि इन पर ध्यान दिया जाय तो यह खींचने और हटाने वाली शक्ति के रूप में दिखाई देती है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती हुई दो हालतों को प्रगट करती है एक दशा में तो वह सूर्य की ओर खिंची हुई है। दूसरे में वह उससे दूर भागने के प्रयत्न में है। पहली दशा के आधीन उसकी ओर खिंची रहती है और दूसरी के कारण चक्कर लगाया करती है। जो बात सूर्य्य और पृथ्वी के सम्बन्ध में दिखाई देती है, वही प्रत्येक प्राणी में है। अंग्रेजी में इन्हें सेंट्री फ्यूगल [Centri fugal] और सेंटरी पीटल [Centri Petal] फोर्सज कहते है। यह राग और द्वेष है।

मनुष्य किसी से प्रेम रखता है और किसी से घृणा। प्रेम रखना तो उसके साथ मिलकर एक हो रहना है और घृणा रखना यह है कि अभी तक बहुत बातों में उसके साथ एकता करने की योग्यता नहीं है। इस कारण से दूर होना प्रिय है। तुम साँप को देखकर दूर भागते हो। कारण यह है कि हर

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

पहलू से अब तक उसे पसन्द नहीं करते। लेकिन अगर दिली प्रेम का अभ्यास होता रहे तो इस अभ्यास से एक ऐसा समय आ जायेगा जब तुमको सांप से भी घृणा न रहेगी और उसे अपना रूप मान लोगे। ज्यों ही यह समझ जाओगे कि यह भी तुम्हारा स्वरूप ही है तो भय एकदम दूर हो जायेगा और उस समय नाम के लिये भी प्रेम और घृणा का निशान बाकी न रहेगा। यही अद्वैत है। मिसाल (दृष्टान्त) यद्यपि भोंड़ी है मगर किसी सीमा तक यह कहने वाले के अभिप्राय को हृदयांकित करा देती है।

जिस साँप से तुमको भय रहता है। मनुष्य के अधिकतर बच्चे उसके साथ खेलते देखेगये हैं। बच्चा उसके फन को हाथ से पकड़ लेता है। अपने मुंह में डालने का इच्छुक रहता है। लेकिन साँप उसे नहीं काटता। कारण यह है कि बच्चा साँप को और साँप बच्चे को अपना स्वरूप समझता हैं। अपना स्वरूप अपने आपको नुकसान कब पहुचाता हैं। हानि तो वहां होती हैं, जहाँ दुई, परायापन और भिन्नता होती हैं। इस पर भली प्रकार विचार करो और प्रकृति के पदार्थो पर अध्ययन करते जाओ तो तुमको हर जगह इसी प्रकार के अद्भुत दृश्य दिखायी देते जायेंगे। इस समय के मनुष्य के बच्चों को दूसरे भयानक फाड़ खाने वाले पशुओं के बीच पलते और खेलते हुए अधिकतर पाओगे। यह कोई और बात नहीं है, केवल प्रेम की एकता का खेल हैं।

राधास्वामी मत का पहला पाठ अहिंसा इसी कारण से हैं दिल दुखाने या अहिंसा के स्वभाव को छोड़ो। अहिंसा जितनी कम होती जाएगी, उतनी ही निर्भयता, प्रेम और एकत्व के खेल हर जगह तुमको दिखाई देते जायेंगे और इसी अवस्था

की पूर्ति का नाम अद्वैत और प्रेम हैं। यह आदि भी है अ
अन्त भी है।

लेकिन इस अहिंसा का अभ्यास किस प्रकार किया जाये ! इसका उत्तर यह है कि गुरु की उपासना में मन लगा दो। इसके सिवाय और कोई दूसरा विश्वासनीय साधन नहीं है। हर आदमी के मेल मिलाप में स्वार्थ का सवाल रहता है। घर बाहर सभी जगह यह मौजद रहता हैं। एक जगह तो कम से कम ऐसी चुनो जहाँ स्वार्थी भाव को दबा कर निष्काम प्रेम के अभ्यास का अवसर हाथ आवे। जिस प्रकार कर्म के निष्काम बनाने का उपाय और स्थान बताया गया है उसी प्रकार भक्ति के निष्काम करने का ढंग बताया जाता है। निष्काम कर्म जिस प्रकार मनुष्य के चित्त को विशाल बनाता है। भक्ति अभ्यास उसे और भी विस्तार का अवसर देता है। कर्म तो कुछ कठिन भी है लेकिन भक्ति सरल है।

गुरु को निज स्वरूप मानकर जो बिना किसी प्रयोजन के उनकी पूजा करते है वह सहज ही में अपने चित्त को विशाल बना लेते है और इस एकाग्र चित्त की वृत्ति की कृपा से जब ये जगत चहुं ओर से गुरु का रूप दिखाई देने लगता है. तब इष्ट पद की असली निकटता आप ही आप प्राप्त होने लगती हैं।

गुरु की भक्ति निष्काम हो। यहाँ तक कि इस भक्ति के सिले में निर्वाण और मुक्ति तक की इच्छा न रहे, तब ही वह फलदायक और सुखदायक होगी। हम रोचक और भयानक बातें कहकर न किसी को रुचि दिलाते हैं और न डराते हैं। स्पष्ट शब्दों में समझाने का प्रयत्न करते हैं कि गुरु का प्रेम जब तक निष्काम और निष्प्रयोजन न होगा, असलियत और सत्यता पर पड़ा हुआ पर्दा कभी आँखों के सामने से न उठेगा वाणी है :—

आतम परमातम नहिं मानूं । अक्षर निःअक्षर नहिं जानूं ।।
सत्त नाम जानूं न अनामी । लिख गिरंथ सब करत बखानो ।।

...........................................................

पिरथम सीढ़ी है भक्ति गुरु की दूसरी सीढ़ी सुरत नाम की ।
जब लग गुरु भक्ति नहिं पूरी । मनमंसा यह होंय न चूरी ।।
मन चूरे बिन सुरत न निर्मल । कैसे चढ़ें और लगे शब्द चल ।।

...........................................................

परिथम पीढ़ी है गुरु भक्ति । गुरु भक्ती बिन काज न रत्ती ।।
और उपाय अनेकन करते । गुरु भक्ती को मुख्य न रखते ।।

...........................................................

## दोहा

गुरु भक्ती दृढ़ करो, पीछे करो उपाय ।
बिन गुरु भक्ती मोह जग, कभी न काटा जाय ।।१।।
मोटे बन्धन जगत के, गुरु भक्ती से काट ।
झीने बंधन चित के, कटि हैं नाम परताप ।।२।।
मोटे जब लगि जाँय नहिं, झीने कैसे जायँ ।
ताते सबको चाहिए, नित गुरु भक्ति कमायें ।।३।।

...........................................................

—×—

# नवासीवाँ वचन

## प्रेम में देना है लेना नहीं है

प्रेम दुनियाँ में एक प्रकार का दुर्लभ पदार्थ है कि जिसे वह मिल जाता है फिर दूसरी वस्तु की उसे इच्छा बाकी नहीं रहती । प्रेम मनुष्य को निस्वार्थी और स्वतन्त्र बना देता है । जिस काम में वर्षों परिश्रम किया जाता है और कुछ हाथ नहीं

आता, वह प्रेम से एक पल में मिल जाता है मगर शर्त य
है कि प्रेम सच्चा और निस्वार्थ हो।

प्रेम में लेने का सवाल नहीं होता किंतु सदा देने का ही सवाल रहता है। तुम बच्चों से प्रेम करके उनको देते ही रहते हो। उनसे कुछ लेते नहीं हो और यह तुम्हारी प्रसन्नता और आनन्द का कारण हुआ करता है। यही हाल हर जगह है जहाँ प्रेम होगा वहाँ देने ही का ख्याल रहेगा लेने की वहाँ बिल्कुल चिन्ता न होगी। प्रेम निस्वार्थ। यह बनिये की दुकान नहीं हैं कि उसे दो एक पैसा दिया और गुड़ शकर इत्यादि उसके बदले में ले लिया। मालिक के प्रेम में भी देने ही का भाव प्रबल होता है। वहाँ भी किसी प्रकार का सवाल करना गलती हैं। दुनियाबी मजहब वाले पूजा और वन्दना किसी स्वार्थ ही को दृष्टि में रख कर करते हैं। "हे ईश्वर हम तेरी प्रार्थना करते हैं। तू हमको संसार में धन दे। ऐ ईश्वर हम तेरी पूजा करते हैं, तू हमको स्वर्ग में स्थान प्रदान कर। या खुदा ! हम यह रोजा नुमाज रोज अदा करते हैं तू हमको स्वर्ग की हूरें इनाम में दे।" यह संसारी सम्प्रदायों की प्रार्थनायें हैं। यह पूजने वाले और वन्दना करने वाले धन, स्वर्ग और हूरों के प्रेमी हैं या खुदा या ईश्वर के प्रेमी हैं ? सोचने से यह बात समझ में आयेगी। ईश्वर की पूजा केवल ईश्वर के प्रेम की दृष्टि से हो तब तो कोई बात भी है अन्यथा यह प्रेम और भक्ति नहीं है।

तुमको किसी स्त्री से प्रेम हो जाता है। वहां क्या करते हो ? देते हो या लेते हो ? वहां तो तुम्हारी यह हालत होती है

---

(१) दिल को मत तारीक कर ख्वाहिश से तू।
हक से हक की सिर्फ करतू जुस्त जू।।

कि दिल, जान, ईमान सब उस पर निछावर कर देते हो और अगर वह इनको तुच्छ समझती है, तो तुम भी अपने दिल, जान व ईमान को तुच्छ समझने लगते हो, जिसे वह पसन्द करती है वही तुमको भी पसन्द आता है। तुम उस वस्तु को उस स्त्री के रुचिकर होने से उसका आदर करते हो। लेकिन ईश्वर या खुदा ही ऐसा भोंदू है जिसके प्रेम का नाम लेकर तुम उससे मनोकामना की पूर्ति चाहते हो। भिखमंगो! मूर्ख मनुष्य चाहे ईश्वर आ प्रेमी कह ले लेकिन तुम ईश्वर के भक्त नहीं हो। तुम किसी और ही वस्तु के प्रेम का दम भरने वाले हो। फिर खुदा या इश्वर तुमको मिलने कब लगा। जाओ। गंगा में मुंह धो आओ।

तुम ईश्वर को पा सके! ईश्वर को तो वह पायेगा, जो उसके नाम पर निछावर हो रहा है। सोते, बैठते, उठते, चलते फिरते सिवाय ईश्वर के नाम के उसे और किसी वस्तु से सम्बन्ध नहीं है। यह ईश्वर के हैं और और ईश्वर उनका है। तुम तो दुनियाँ के प्रेमी हो, दुनियाँ तुमको मिलेगी। ईश्वर का दर्शन प्राप्त न होगा। तुम समझते हो कि हम ईश्वर की पूजा पाठ और उसकी स्तुति का गीत गाकर उसे धोखा दे सकेंगे। यह तुम्हारी भारी मूर्खता है। वह तुम्हारे हृदय के अन्तरीय भाग में रहता हुआ तुम्हारी चालबाजियों को खूब भाँपता है। और कोई धोखे में आ जाये, मगर वह जो सबका अन्तर

(२) तुझे इश्क इंसां का होता है जब।
दिल व जाँ से तू हाथ धोता है तब॥
तेरी नजर उसे गर न आये पसन्द।
तो होता है दिल तेरा बस दर्द मंद॥
यही हाल है हक परस्तों का भी।
फिदा उस पर रहते हैं वह जीते जी॥

आत्मा है, अन्तरयामींहै, घट घट का वासी है किस तरः धोखा खायेगा।

इसी प्रकार गुरु के प्रेम के लालायित गुरु से मुक्ति, सत-नाम और धुर पद तक नहीं माँगते। वह मांगने क्यों लगे! उनका प्रेम तो सिर्फ प्रेम की दृष्टि से है और उन्हें प्रेम की दृष्टि आप ही आप बिना माँगे हुए मिलती है। तुम्हारी स्त्री तुमसे प्यार करती है। तुम आप ही उसे उसके आराम और सजावट की वस्तुयें इकट्ठा करते रहते हो। इसी प्रकार गुरु जो वास्तव में ईश्वर का निज रूप है.तुमको बिना सवाल किये हुए प्रेम की सम्पदा प्रदान करता है, जिसमें हर प्रकार की चित्त की एकाग्रता, शान्ति, आराम और जीवन हैं और यही सब कुछ है।

यह कभी न समझो कि तुम गुरु को दिल देकर यों ही कोरे रहते हो। ऐसे विचार करना भूल होगी। अब तुम अपने बाल बच्चों को खिलौने देकर प्रसन्न होते हो, तो क्या यह प्रसन्नता दिल के देने से तुम्हे न मिलेगी। दिल देना आप ही उसका उत्तम पुरुस्कार हैं। इसे आगे चलकर समझो।

—x—

# नव्वेवाँ वचन

## प्रेम ही सच्ची तपस्या है

योगी योग का साधन करता है। मुजाहिदा में लगा रहता है। पुजारी अपनी पूजा का बड़प्पन दिखाता है, लेकिन इस सब परिश्रम के करने पर भी उन्हें मिलता क्या है। यदि यह सब ईश्वर के लिये और ईश्वर के नाम पर नहीं है तो इन सब

पर हजार बार धिक्कार ! इतना कष्ट उठाया गया। मिला क्या ? सिद्धि शक्ति ! चमत्कार दिखाने की शक्ति ! यह स्वयँ क्या हैं ? माया के जाल और काल के जंजाल ! यह तो न मिलतीं तब ही भला था। इनके मिलते ही मनुष्य और भी कुपंथ (गुमराही) के बन्धन में बंध जाता है और निकट पहुचने के बदले ईश्वर से और भी कोसों दूर जा पड़ता है। इसका परिणाम हैरानी और परेशानी होता है। इन सिद्धि शक्ति वालों का चाहे दुनियां मान करे, उन्हें निपुण समझे ! ऐसे निपुण तो शासनाधिकारी बुद्धिमान और धनवान भी है। जिस प्रकार यह दुनियाँ के जाल में लिपटे पड़े रहते हैं, वही दशा चमत्कार दिखाने वालों की भी होती है।

सच्ची तपस्या प्रेम है जो दीनता के साथ मौज आधीन या भगवत् इच्छा पर रहने के मार्ग ले जाकर ससार के दुख सुख की ओर से यों ही प्रेमियों की दृष्टि को हटा देता है और सिवाय असली प्रीतम के उनके मन को दूसरी ओर आकर्षित नहीं होने देता। सिर पर कठिनाइयाँ आयें। वह चुपचाप सन्तोष के साथ सबको सहन कर लेता है और केवल एक अपने प्रीतम का सौदा पकाया करता है। वही उसकी दुनियां है : वही उसके आकर्षण और सम्बन्ध का केन्द्र है। उसके सिवा वह और किसी को देखना तक नहीं चाहता।

नैनों अन्दर आव तू, नैन झाँपि तोहि लूँ।
ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन दूँ॥

इसके दृढ़ निश्चय और दृढ़ इच्छा शक्ति का पता भी योगी और कठिन तपस्या करते वालों में नहीं है। उसका इनकी ओर ध्यान भी नहीं होता। काम आप ही आप होता चला जा रहा है। दिल के पर्दे फट रहे हैं। अन्दर ही अन्दर साक्षात्कार

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

है। यदि योग का अर्थ मिलाप हैं तो केवल इसी प्रेम को र योग कहना चाहिए, बाकी सब भ्रम है। यह प्रेम योग है।

इस प्रेम के सुख और आनन्द की जानकारी किसको है? कौन इसकी महिमा को जान सकता है। इसका ज्ञान केवल प्रेमी ही को होता है। इसके आनन्द से दुनियां अनजान रहती है। इसमें वह आनन्द है जो और किसी वस्तु में नहीं है।। निर्वाण का अर्थ है जला कर फूँक देना, इस प्रेम के साधन से दिल के कुल निकृष्ट भाव जल कर खाक हो जाते हैं और केवल मालिक ही मालिक रह जाता है।

प्रेम ही मन के योग और मन के भ्रमों का सच्चा वैद्य है जिसके निदान में कभी गलती नहीं होती। यह असली आराम और असली स्वास्थ्य है। जिसको यह मिल गया फिर वह संसार के रोग सोग का शिकार नहीं होता।

प्रेम ही सच्चा धन है। जिसे यह धन मिल गया उसे मानसिक निर्धनता से सदा के लिये छुटकारा मिल जाता है और फिर उसे कोई निर्धन नहीं कह सकता। वह सन्तोषी हो जाता है। वह चिन्ता रहित और धनी हो जाता है।

प्रेम ही सच्ची शक्ति है जिसको यह मिल जाती है, फिर दुनियाँ की कोई शक्ति उसे आधीन नहीं कर सकती। इसके सामने पड़ने का साहस भी किसी को नहीं होता। उपनिषदों में वर्णन है :—"जो प्राण का साधन करते हैं, उनके शत्रु उनसे टकरा कर उसी प्रकार चूर चूर हो जाते हैं, जिस तरह मिट्टी का ठेला चट्टान से ठोक खाकर बिलकुल कुचल कर नष्ट हो जाता है।" यह प्रेम प्राण हैं क्योंकि कुल शक्ति प्राण में हैं।

सूफी अहं भाव के त्याग का आदेश देते हैं मगर इसमें सफलता नहीं होती। वैरागी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार

के दमन का राग सुनाते हैं, मगर एक भी तो उन पर विजय नहीं पाता, मगर प्रेम बिना अहंकार किये हुए वासनाओं को धूल में मिला देता है और काम क्रोध आदि में से किसी को यह शक्ति नहीं होती कि उसके साथ विरोध करें।

देखो और मानो। जुबानी जमा खर्च न करो। माँ तन्दुरुस्त है, बच्चा बीमार है। मां बच्चे को प्यार करती है। तन्दुस्त माँ बीमार बच्चे के सिरहाने बठा हुइ उसकी हालत की देखभाल करती है। यह प्रेम है। इस प्रेम करने वाली मां को नमस्कार है।

चारपाई में पड़ा हुआ बच्चा पेशाव और पाखाना करदेता है। मां आप इसे उठाकर अच्छी जगह लिटाती है और आप बुरी जगह पर रहती है, जिसने प्रेम और घृणा के सवाल का सदैव के लिये अन्त कर दिया है। ऐसा त्याग किस योगी में है माँ ने कई रोज लंघन किया। कई दिनों बाद खाने को मिला। अपने लड़के को खिला दिता। आप चुपचाप सन्तोष कर लेट रही जिभ्या पर शिकायत का एक शब्द भी नहीं आया। वह सन्तुष्ट है। यह हालत तुमको उपासकों में कहां मिलती है? इस दौलत का प्रदान करने वाला केवल प्रेम है। प्रेम के सिवा इस अहम त्यात्र का दृश्य किसी और जगह नहीं दिखायी देता और दिखाई दे कैसे सकता है! यह विशेषता तो प्रकृति ने केवल एक प्रेम ही को प्रदान की है। ऐ अमूल्य प्रेम! तुझको बारम्बार नमस्कार है। तू आ, और हमारे उजड़े दिल में आकर वस। तेरे सिवाय हम और किस की इच्छा करें। जब यह प्रेम गुरु के साथ होता है तब वह अपने अप्रत्यक्ष लाभ दिखाने लगता है।

अज्ञानी शायद यह कहते होंगे कि यह हालत आनन्ददायक नहीं है। वह प्यार करने वाली माँ से थोड़ा पूछ देखें कि बच्चे

के प्रेम में दुख और परिश्रम उठाने से क्या सुख मिलता यह कहने सुनने की बात नहीं है। जो प्रेम को दिल देता है केवल वही उसके आनन्द का पता पाता है।

—:०:—

# इक्यानवेवाँ वचन

## प्रेम निर्भयता है

वेदों में बार बार ईश्वर से प्रार्थना की गई है, कि "तू मुझे अभयदान दे और अभय कर दे।" निर्भयता ही शान्ति की सच्ची निशानी है। जिसके दिल में किसी प्रकार का भय होगा, उससे सचाई, ईमानदारी और कुशलता कोसों दूर रहेगी। यह ऐसी सच्ची बात है कि जिसके सिद्ध करने के लिये किसी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। भय, मक्कारी, घृणा और बेचैनी पैदा करता है और डरने वाला आदमी शील स्वभाव नहीं हो सकता। हाँ, वह चापलूस और मक्कार अवश्य हो जाता है। भय से नीचता के भाव प्रबल हो जाते हैं।

धर्म और नियम पर चलने वाला और सच्चे सदाचारी की पहचान निर्भयता है। जिसके दिल में पाप बसता है उसके दिल में भय भी रहता है। दुष्ट आदमी अपनी छाँह से डरता है। धोखेबाज को कभी किसी का विश्वास नहीं होता, क्योंकि उसे अपना भी विश्वास नहीं है। वह अपनी तरह औरों को भी जानता है। चूँकि दृष्टि अविश्वास वाली बन गयी है, तमाम दुनियाँ उसे मक्कार और धोखेबाज ही दिखाई देती है।

(१) इश्क के मतलूब की है जान और।
उसकी हालत समझो दिल में करके गौर॥

वह उसी का अभ्यास करता हुआ दिन प्रतिदिन आध्यात्मिक बरकतों से वंचित होता रहता है।

यह वेदों से निर्भयता की प्रार्थना करने का कारण है।

यह निर्भयता मनुष्य में किस तरह उत्पन्न होती है ?

परिश्रम के साथ नियमों का पालन करते रहने से मनुष्य के हृदय में यह प्रगट होती है। नियम क्या है ? वेद कहते हैं— 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे।' कुल संसार को मित्रता और प्रेम की निगाह से देखना' यही नियम है। प्रेम एति है और हिंसा करना नेति है। यह धर्म, सदाचार और अध्यात्म की जड़ है। लेकिन मनुष्य हर भले बुरे के साथ व्यवहारिक रूप में प्रेम का बर्ताव नहीं कर सकता। हर जगह प्रतिकूल परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। यह सच है कि ये दृश्य उसी के हृदय की छाया हैं जिसकी दृष्टि जिस प्रकार की बन गई है, उसे वैसा ही तो दिखाई देगा। परन्तु इसका उपाय भी है और उपाय यह है कि प्रेम का केन्द्र निश्चित कर लिया जाये। स्त्री अपने पति को प्यार करती हुई कुल कुटुम्ब को प्यार करती है। अगर वह पति को छोड़कर औरों ही को प्यार करती रहती है तो कभी सम्भव नहीं है कि वह और घरवालों को प्रसन्न रख सकेगी, क्योंकि अब तक उसने मन के ठहराव का मुख्य आवश्यक केन्द्र नहीं बनाया। पत्ते पत्ते के सींचने से वृक्ष के हरे भरे होने में सदैव संदेह रहता है। वृक्ष की हरियाली जड़ के सींचने से प्राप्त होती है। जिस समय स्त्री पति के प्रेम को दिल देगी, केन्द्र बन जाएगा और उस केन्द्र के सहारे प्रेम के ऐसे शक्तिशाली अभ्यास का अवसर प्राप्त होगा कि पति तो उसका हो ही जायेगा, पति के कुल सम्बन्धी प्यारे दिखाई देंगे। और यदि वह सच्ची है तो केवल एक पति प्रेम के कारण उसे सबकी दृष्टि में आदर मान का अधि

कार भी प्राप्त हो जायेगा, जो और दिशा में किसी प्रव सम्भव नहीं था। व्यवहारिकजगत में हर समय हम इस नियम पर चलते रहते हैं। छोटे मंडल, छोटे घर, छोटे व्यापार के भीतर रह कर हम बड़ा मंडल, बड़ा घर और बड़े व्यापार के योग्य होते हैं। जब तक प्रारम्भ में छोटा मण्डल, छोटा घर और छोटा व्यापार न होगा, बड़ा बनना असम्भव होगा। पृथ्वी अपने प्रतिदिन चक्कर में अपने ही चहु ओर घूमती हुई एक वर्ष में सूर्य के चहुँ ओर बड़ा घेरा बना आती है और कई सालों के बाद और बड़े सूर्य के चहुं ओर बड़ा घेरा बनाती हैं। और भी इसी प्रकार समझ लो। इसी विचार के अनुसार यदि देखा जाय तो प्रत्येक मनुष्य, छुटाई से बड़ाई की ओर जा रहा है और उसका काम छोटे पैमाने से आरम्भ होकर बड़े पैमाने में बदल जाता हैं।

सार्वजनिक प्रेम, सार्वजनिक भाईचारा और सार्वजनिक सहानुभूति तुरन्त ही पैदा नहीं होते। उनके उन्नति देने में समय लगता हैं।

राधास्वामी मत की शिक्षा है कि गुरु को अपने प्रेम का केन्द्र बनाकर उसी के द्वारा प्रेम के नियम का अभ्यास करो। जीवन जहाँ थोड़ा भी नियमानुसार हुआ, तुम आप ही आप संसार को गुरु का रूप देखकर उसके प्रेम का दम भरते हुए निर्भय हो जाओगे और निर्भयता आप ही आत्मसंयम, संतोष, एकाग्रता और महान मानसिक शक्ति में बदल कर तुमको कुछ का कुछ बना देगी।

प्रेम मनुष्य को निर्भय बनाता है और यहाँ तक साहसी बनाता हैं कि आदमी मृत्यु और जीवन तक का ध्यान नहीं करता। निर्बल और कोमल स्वभाव वाली स्त्री अंधेरी रात

में निकलने का साहस नहीं करती किंतु किसी की प्रीति उसके हृदय में आने दो, फिर वह अकेली निर्भयता के साथ प्रेमी की खोज में निकल आती है। माता कुत्ते की आवाज सुनकर डर जाती है किन्तु यदि वह बच्चे वाली है और शेर ने उसके बच्चे पर हमला किया है तो वही डरने वाली माता निर्भय होकर शेर पर झपटेगी और उसके जबड़े को चीरकर बच्चे के बचाने के साहस का खेल दिखायेगी। स्त्री तो फिर भी मनुष्य जाति है, निर्बल बकरी अपने बच्चों की रक्षा के विचार से बड़े बड़े कुत्तों को सींगों से उठाकर फेंक देती है, यद्यपि दूसरे समय वह विवशता से भागती हुई दिखायी देती है।

मनुष्य में केवल प्रेम के उत्पन्न होने की आवश्यकता है। फिर समस्त सद्गुण आप ही आप उसमें आने लगते हैं।

प्रेम सदैव प्रीतम का होता है। यदि तुम्हारा ईश्वर और उपास्य देव प्रेम का स्वरूप है, तब ही तुम उसे प्यार कर सकते हो। यदि तुम उसे संकट देने वाला समझ रहे हो, तो फिर उसके प्रेम का दम भरना तुम्हारी पहुँच से बाहर है। क्योंकि संकट देने वाले से कोई प्रेम नहीं कर सकता। जहां प्रेम होता है वहाँ न तो संकट देने वाले को संकट की सूझती और न प्रेम करने वाले के दिल में ही वह ख्याल होता है कि वह दुख देने वाला है। प्रेम सब दोषों को छिपाने वाला है। प्रेमी की निगाह में प्रीतम सब दोषों से रहित होता है। प्रेम न केवल प्रीतम ही के ऐबों को नहीं देखता, किन्तु वह दुनिया के ऐब की ओर दृष्टि नहीं करता। उसको इतना समय कहाँ है कि किसी की बुराई या नुक्ताचीनी करे। प्रेम से पवित्र कोई चीज नहीं है। चित्त से मलीनता को दूर करता हुआ शुद्धताई प्रदान करता है। निर्बल और असत विचारों को दूर करके

सत् और सबलता के उत्साह वर्धक विचारों को सब में भर देता है। प्रेम दुनियाँ में वह शक्तिशाली पहलवान है, जिससे कुश्ती लड़ने का साहस भूलोक या आकाश की शक्तियों को भी नहीं होता। वह कभी हार नहीं मानता। यह कारण है कि वह निर्भय बना देता है।

सत् गुरु से प्रेम करो और निर्भय होकर अध्यात्म के मरहलों से दनदनाते हुए गुजर जाओगे और इष्ट पद पर पहुंच जाओगे। दूसरी तरह यह सम्भव नहीं है।

—×—

# बानवेंवां वचन

## प्रेम ही सच्ची पूजा है

प्रेम में मक्कारी नहीं होती। इसलिये वह शुद्ध पूजा कहलाता है। गुरु का प्रेम ही सच्ची पूजा है। और इसी से मन लगाने की आवश्यकता है। वाणी कहती है :—

गुरू की कर तू हर दम पूजा।
गुरू समान कोई देव न दूजा ॥१॥
गुरू चरण सेव नित करिये।
तन मन गुरू आगे धरिये ॥२॥
गुरू दरस करो आँखन से।
गुरू वचन सुनो सरवन से ॥
गुरू के बल मन को मारो।
गुरू के बल काल संहारो ॥४॥
गुरू ब्रह्म रूप धरि आये।
गुरू पार ब्रह्म गति गाये ॥५॥

गुरू सत्त नाम पद खोला।
गुरू अलख नाम को तोला।।६।।
गुरू रूप धरा राधास्वामी।
गुरू से बड़ नहीं अनामी।।७।।

गुरु की महिमा को दुनियाँ नहीं समझती। इस कारण से अधिकतर खण्डन मण्डन के झगड़ों में फंसी रहती है। परन्तु क्या किसी में इन झगड़ों में पड़े रहने से आत्मज्ञान आया है। कभी नहीं। झगड़े तो झगड़े ही हैं। झगड़े ही का नाम दुनियां है, परन्तु जहाँ जिन जिन लोगों में सच्ची गुरुभक्ति आई उनके जीवन का अध्ययन करो। जमीन और आकाश की तब्दीलियां (परिवर्तन) का दृश्य तुमको दिखाई देगा। कोई भी हो, किसी मार्ग, किसी पन्थ, किसी मत या किसी दीन आईन के गुरु भक्तों को देखो। उनकी शकल और सूरत में सच्चाई का झलकता हुआ तेज दिखाई देगा। वह, वह लोग हैं जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों को पलट दिया है। काल और समय के हालात और जीवन को बदलने वाला सुन्दर बनाकर उसके पल्ले से बुराई का धब्बा मिटाने वाला केवल गुरु का प्रेम है। यदि दुनियां से गुरु भक्त दूर हो जाय तो यह शमशान से भी बुरी बन जायेगी। यह वह शुद्ध तत्व है, जो अपना रूप रंग देकर इसको रहने को जगह बनाता हैं। बुद्ध धर्म का इतिहास पढ़ो। कबीर साहब के हालात देखो। पंजाब के रूहानी बादशाहों, गुरु नानक साहब के उत्तराधिकारियों के हालात पढ़ो और तुम आप समझ जाओगे कि गुरु भक्ति क्या वस्तु है।

यदि योगी, यती, सन्यासी, सूफी, सालिक और निष्ठा वालों में आत्मज्ञान की फुरना नहीं होती तो इसका कारण

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

केवल यही है कि गुरु भक्ति ठीक और सच्चे रूप में नहीं जाती।

जोगी जंगम सेंवड़ा, सन्यासी दरवेश।
बिना प्रेम पहुंचें नहीं, दुर्लभ सतगुरु देश॥

— × —

# निरनवेवां वचन

## प्रेम की दृष्टि

प्रेम सर्वव्यापक तत्व है, लेकिन जब तक इस सर्वव्यापक तत्व को दृष्टि न मिल जाय तब तक कोई उसका दर्शन कैसे करेगा। पग पग पर, पल पल में और साँस साँस में हम अपरिमित तत्व से मिलते रहते हैं, लेकिन जानकारी नहीं होती कि ईश्वर कहाँ है। यह सवाल हर मनुष्य की जिभ्या पर रहता है लेकिन यह कोई नहीं सोचता कि ईश्वर कहाँ नहीं हैं दोनों बातें एक ही हैं। एक असत (Nagative) है, दूसरी सत (Positive) है मगर आशय में अन्तर नहीं है। वह हर जगह है हममें, तुममें, जीव जन्तु में जड़ चेतन कोई जगह उससे खाली नहीं हैं, लेकिन वह दिखायी नहीं देता और दिखाई क्यों दे ! जब आंख हो तब वह दिखाई दे। बिना आँख वाले ने क्या देखा है और वह क्या देखेगा। द्वैत में वही हैं अद्वैत में वही है और विशिष्ट द्वैत में भी वही है। इनके सिवा कोई और भी मार्ग है तो उसमें भी वही मौजूद हैं। उससे रहित एक कण भी नहीं है।

हमारी दो आंखें, दो नाक, दो कान और दो जीभ, दो हाथ दो पैर और समस्त शरीर व इन्द्रियों के जोड़े वास्तव में क्या है। यह पुरुष और प्रकृति के कारोबार के प्रतिबिम्बित रूप

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

है रग रग और रोम रोम में दोपना हैं। ये सब ऐति औ नेति के रूप हैं। इनमें एक कोई भी नहीं है, क्योंकि जब पुरुष और प्रकृति दो हैं तो यह भी तो उन्हीं के खेल के प्रतिबिम्ब व रूप हैं। यह एक कैसे होने लगे। दाने दाने में दुई था दो पने का खेल है। पत्ते पत्ते में द्वन्द पना है। विभिन्नता के जगत में विभिन्नता ही तो दिखाई देगी। मटर के दो दाने, उर्द के दो बीज, चने के दो टुकड़े क्या तुमको यह रहस्य नहीं बताते। तुम देखते हुए भी अंधे बनते हो। तुम जानते हुए भी अनजान रहते हो। यहां हर जगह यही दशा है, लेकिन हाँ, यह सब प्रेम के लासे से गुथे हुए हैं और हर जगह इनका कारोबार अति सुन्दर और शानदार दिखायी दे रहा है। सूर्य चन्द्रमा, तारागण, आकाश, वायु, जल मिट्टी सब में एति और नेति के अंश हैं। सब मिल जुल कर कैसा सुन्दर दृश्य दिखाते हैं। तुम्हारा मन भी इससे खाली नहीं है। उसमें भी संकल्प विकल्प की दो धारें हर समय काम करती रहती हैं। ऐसी ही बुद्धि है, ऐसा ही चित्त है और ऐसा ही अहंकार है। किसको किसको कहें "घर घर देखा एक ही लेखा। साधु सबका किया परेखा," मगर इनमें संगठन, एकता और समानता है। इस कारण से यह सुन्दर दिखायी देते हैं और यहाँ संगठन, एकता व प्रेम है।

इस प्रेम की दृष्टि बना लो और उसी समय दुनियाँ बदल जायगी। बिना प्रेम के इसका बदलना कठिन है क्योंकि भ्रम ने सबको भरमा रखा है। इस प्रेम की दृष्टि को गुरु से प्राप्त करो। तब अद्वैत के रहस्य की जानकारी होगी और तुम्हारी अशान्ति क्षणमात्र में दूर हो जायेगी।

हममें और तुम में क्या अन्तर है? कुछ भी नहीं। किन्तु हम शान्त हैं और तुम अशान्त हो। सतगुरु की दया से हमारा

भ्रम मिट गया हैं, तुम अब तक भ्रम में पड़े हो। यह भ्रम असली नहीं है, बिल्कुल कल्पित है। यदि असली होता तो कभी दूर होने वाला नहीं था।

द्वैत में अद्वैत का दृश्य केवल प्रेम की दृश्य से देखा जाता है इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

—×—

## चौरानवेवां वचन

### प्रेम रहस्य है

यह बता दिया गया कि अद्वैत और कुछ नहीं है, प्रेम ही का नाम अद्वैत है और यह वह भारी रहस्य है जिसका हल सरलता से नहीं होता। दुनियां हैरान है; विद्वान परेशान हैं, और यत्न करने पर भी यह रहस्य समझ में नहीं आता। 'इश्क क्या शै है, किसी कामिल से पूछना चाहिये। किस तरह जाता है दिल बेदिल से पूछा चाहिए। मगर यह कामिल और यह बेदिल कौन है जो इस गुत्थी को सुलझाये। उसी कामिल पूर्ण और बेदिल का नाम गुरु हैं। जो परिपूर्णता पर आकर विजयी रहता है और जो दिल रखता हुआ दिल वाला बनकर बेदिल रहता है, उसी को गुरु कहते हैं। जब ऐसा उपदेशक मिले तब यह गुप्त रहस्य खुले।

एक आदमी को किसी से प्रेम हुआ। वह होश व हवास और समझ बूझ खो बैठा। दुनियाँ तो उसे बावला कहती है लेकिन उसका भाव, जिसने मन और बुद्धि को वश में कर लिया है, बड़ा शक्तिशाली है। इसका पद बुद्धिमान और दिल वाले से ऊंचा हैं। बुद्धिमान और दिल वाले तो बुद्धि और मन

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

के गुनाहन की उलझन में पड़े रहते हैं। इसने इन दोनों अपने आधीन कर कर लिया है।

गुरु वाणी कहती है—

> मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
> जो मन पर असवार है, सो साधु कोई एक ।।

मन को बस में करना कोई सरल बात तो नहीं है। कहने को जो चाहें कहा करें मगर दुनियां में ऐसे लोग कहां हैं जो मन पर विजयी रहते हैं।

अद्वैत का रहस्य कठिन है। इससे विचित्र कोई वस्तु नहीं है, मगर इससे सुगम भी तो कुछ नहीं है। थोड़ी सी दृष्टि बना लेने की देर है। दो अलग अलग आंखें मिलजुल कर एक देखती हैं; दो अलग अलग कान मिलजुल कर एक सुनते हैं। दो नाक मिल जुल कर एक सूंघती हैं। दो जीभ मिलजुल कर एक कहती हैं, क्या इस दोपने में एकपना तुमको दिखायी नहीं देता ? तुम और कहीं अद्वैत के भेद का पता लगाने जाते हो। अपने ही कारोबार पर क्यों दृष्टि नहीं डालते। अगर साहस हो तो इंकार करो कि इस दोपने में एकपना नहीं है। यदि तुम तर्क वितर्क करने वाले हो तो हमें भी समझाओ कि दोपने में एकपना नहीं है, मगर हम जानते हैं कि यह तुम्हारे वश के बाहर है।

इस दोपने के अन्दर अद्वैत का आन्नद और मिठास छिपा हुआ है। जब दो मिलकर एक हो जाते हैं, तब ही आनन्द आता है। स्त्री और पुरुष का मिलाप प्रसन्नता का कारण होता है। खाना और जीभ का मिलाप स्वाद का आनन्द देता है। कान और स्वर का मिलाप अत्यन्तआनन्द देने वाला होता है। अभिप्राय यह है कि जो प्रसन्नता और आनन्द है वही आनन्द ही में तो है और तुम ऐसे भ्रम में पड़े हो कि यह